अप्रैल 2003

बूधन

रोमा राष्ट्रीय दिवस और महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जन्म दिवस पर विशेष आलेख

विमुक्त, घुमन्तू व अन्य जनजातियों पर केंद्रित

बूधन

वर्ष : 1 अंक : 1 अप्रैल, 2003

मुख्य सलाहकार
मैनेजर पाण्डेय

सलाहकार मंडल
महाश्वेता देवी
जी. एन. देवी
लक्ष्मण गायकवाड़
गुणाकर मुले

कानूनी सलाहकार
एन० डी० पंचोली

संपादक
अनिल कुमार पाण्डेय

संपादक मंडल
सूरज देव बसन्त
श्याम सुशील
सुनन्दा दीक्षित

आवरण सज्जा
ऋतु सुधाकर

संपादकीय व प्रबन्ध कार्यालय
महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान
बी-3, सी ई एल अपार्टमेंट्स
बी-14, वसुन्धरा एन्क्लेव
दिल्ली-110096
फोन : 22618064, 24922803
E-mail : rmrc @ bol.net.in
Web site:www.rmrcindia.org
Partner of : oneworld.net.

संपादन और संचालन पूर्णत: अवैतनिक और अव्यवसायिक
लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, जिनसे संपादक/प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

हाशिए के लोग		1
आपका पत्र मिला		2
बंजारा और रोमा संस्कृति	ग्राटन पक्सन	4
देश-देश के ये घुमक्कड़	ओवेन सी. केल	6
अपराधी जनजाति विधान और परिणाम	मोतीराज राठोड	9
पालि, संकर-संस्कृत-प्राकृत और बौद्ध दर्शन को महापंडित राहुल सांकृत्यायन का अवदान	संघ सेन सिंह	13
राहुल का कथा-कर्म और इतिहास-बोध	मधुरेश	23
राहुल की परिवर्तनकामी इतिहास दृष्टि का सूचक : मध्य एशिया का इतिहास	लाल बहादुर वर्मा	35
राहुलजी और बौद्ध धर्म, दर्शन एवं संस्कृति	अनिल कुमार पाण्डेय	39
गज़ल	राघवेन्द्र तिवारी	44
अज्ञानकोष	आत्माराम कनिराम राठोड	45
बंजारा लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	आर. रमेश आर्य	60
जनजातीय समाज की आवासीय व्यवस्था-पाठा के विशेष संदर्भ में	बलराम	62
भूख उनकी नहीं नौकरशाहों की है	सुनीता शर्मा, अमरेंद्र किशोर	65
दलित और विमुक्त जातियाँ : अन्त:संबंध	रजनी तिलक	68
संविधान की आठवीं अनुसूची में बंजारा भाषा का स्थान हो	बंजारा संघ	70

गतिविधियाँ

भारतीय जनगणना में गैर-अधिसूचित जनजातियों, खानाबदोश-अर्ध-खानाबदोश जनजातियों की गणना करना		71
रोमा राष्ट्रीय दिवस		72
सरकारी एजेंसियाँ मानवाधिकार उल्लंघन करें तो सरकार मुआवजा दे	न्यायाधीश जे.एस. वर्मा	73
बागरिया/बागरी समाज की ओर से राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री को पत्र		74
उन्माद, असहिष्णुता और स्वप्नहीनता के इस कठिन समय में कबीर	धर्म नारायण यादव	76
भाटी माइन्स की यात्रा	अनिल कुमार पाण्डेय	78
सांसी बस्ती में एक दिन	सूरज देव बसन्त	80
जंगल में सुरक्षा की तलाश	हेमलता मृत्युंजय	82
राजस्थान के घुमन्तू कबीलों में मुक्तिधारा का लोक अभियान	रतन कात्यायनी	83

सूचना: कतिपय परिस्थितिवश पूर्व घोषित बूधन का **बंजारा विशेषांक** फिलहाल पाठकों तक नहीं पहुंच पा रहा है, जिसका हमें खेद है। -संपादक

हाशिए के लोग

8 अप्रैल का रोमा लोगों के जीवन में विशेष महत्व है। प्रतिवर्ष इस दिन को विश्व के साठ से अधिक देशों में रोमा लोग 'रोमा राष्ट्रीय दिवस' के रूप में मनाते हैं। इस दिन को वे आपसी भाईचारा, एकता और एक लक्ष्य के प्रतीक के रूप में मनाते हैं। विगत वर्ष रोमा लोगों ने भिन्न-भिन्न देशों में विश्व की 40 नदियों के किनारे एकत्रित होकर एक हजार सालवीं जयंती मनाई। इस दिन रोमा भाई बहनों ने अपनी मातृभूमि भारत से अपने पूर्वजों से बिछड़ जाने की याद में नदी में फूल अर्पित किए। इस वर्ष 8 अप्रैल को रोमा लोगों की कई संस्थाओं – इंटरनेशनल रोमानी यूनियन, ट्रांस-यूरोपियन फेडरेशन, एसोसिएशन ऑफ रोमा, जिप्सी काउंसिल तथा आम्रोड्रोम इत्यादि ने दीप जलाकर राष्ट्र दिवस मनाने का फैसला किया है। इस अवसर पर 'बूधन' के इस अंक में ट्रांस यूरोपियन रोमा फेडरेशन के महासचिव श्री ग्राटन पक्सन एवं जाने-माने विद्वान श्री ओवेन सी. केल के आलेख प्रस्तुत हैं जोकि अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

9 अप्रैल महापंडित राहुल सांकृत्यायन की जन्मतिथि है। उनके अवदान को याद करते हुए राहुल की इतिहास दृष्टि, कथाकर्म तथा बौद्धधर्म, दर्शन और संस्कृति पर कुछ आलेख सम्मिलित किए गए हैं।

अपराधी जनजाति अधिनियम और उसके निरस्त्रीकरण के बाद अभ्यासिक अपराधी अधिनियम के लागू होने से इन जनजातियों के लोगों के कष्टपूर्ण जीवन का चित्रण श्री मोतीराज राठोड, जो स्वयं बंजारा जनजाति के हैं, ने अपने आलेख में प्रस्तुत किया है।

ऐसा समझा जाता है कि राजधानी दिल्ली में विमुक्त-घुमन्तू और अन्य जातियों, जनजातियों के लोगों की कोई समस्या ही नहीं है। इसी संदर्भ में 'बूधन' टीम ने दिल्ली के मंगोलपुरी तथा भाटी माइन्स इलाके का दौरा किया। मंगोलपुरी में सांसी जनजाति के लोग रहते हैं जिनकी संख्या लगभग एक लाख है। ये तथाकथित अपराधी जनजाति में आते हैं। अपराधी जनजाति अधिनियम के निरस्त्रीकरण के बावजूद सभ्य समाज के पूर्वाग्रहों के चलते इनका जीवन दूभर बना हुआ है। भाटी माइन्स में ओड़ जाति के लोग रहते हैं जो पश्चिमी पाकिस्तान से विस्थापित होकर भटकते हुए यहाँ तक पहुँचे हैं। अंतहीन तकलीफों को झेलते हुए आज वे पुनः विस्थापन के कगार पर खड़े हैं। इन्हीं मुद्दों से जुड़ी 'बूधन' की रपट इस अंक में दी जा रही है।

गैर-अधिसूचित जनजातियों, खानाबदोश- अर्द्धखानाबदोश जनजातियों की सही गणना के आँकड़े उपलब्ध नहीं होने से इन जनजातियों को लाभ पहुँचाने के रास्ते में बराबर बाधाएँ उपस्थित होती रही हैं। इस संदर्भ में गैर-अधिसूचित एवं खानाबदोश जनजातीय अधिकार कार्य समूह के सचिव डॉ. जी.एन. देवी के पत्र के जवाब में भारत के महारजिस्ट्रार के कार्यालय से एक पत्र प्राप्त हुआ। इस पत्र से इन जनजातियों की गणना की आशा बनती है। अतः यह पत्र इस अंक में शामिल किया जा रहा है। मानवाधिकार से संबंधित न्यायाधीश जे.एस. वर्मा, पूर्व अध्यक्ष, मानवाधिकार आयोग का महत्वपूर्ण बयान भी इस अंक में अपना महत्व रखता है, क्योंकि विमुक्त और घुमन्तू जनजातियों के मानवाधिकारों का हनन अक्सर ही सरकारी तंत्रों द्वारा होता रहा है।

हमें खुशी है कि 'बूधन' शीर्षक को 'भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक-कार्यालय' ने मान्यता प्रदान कर दी है।

अनिल कुमार पाण्डेय

आपका पत्र मिला

मुझे आपके द्वारा भेजा 'बूधन' प्राप्त हुआ। भेजने के लिए आपको धन्यवाद। इस अंक में दिए गए लेखों को और विशेषकर 'हाशिए के लोग' को पढ़कर मुझे बहुत ही आनंद हुआ है कि मेरे लिए शब्दों के द्वारा बयान करना संभव नहीं है। मैं इसलिए भी बूधन संपादक मंडल का आभारी हूँ कि आपने मेरे द्वारा लिखे गए पत्र को और बंजारा बोली भाषा के लिए बूधन में अपने विचार प्रकाशित किए।

'बूधन' का आगामी अंक 'बंजारा विशेषांक' हेतु आपने आलेख आदि भेजने के लिए आमंत्रण सूचना दी है। इस विशेषांक को ध्यान में रखते हुए मैं 'बंजारा लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' शोधपूर्ण मौलिक लेख एवं लोक नृत्यों से संबंधित फोटो भेज रहा हूँ। आशा है कि यह शोध लेख संपादक मंडल को पसंद एवं उपयोगी लगेगा।

डॉ. आर. रमेश आर्य
नागपुर, महाराष्ट्र

'बूधन' का अंक प्राप्त हुआ। 'बूधन' 'विमुक्त, घुमंतू एवं अन्य जनजातियों पर केन्द्रित' न केवल एक पत्रिका है बल्कि एक आन्दोलन है। आजाद हिन्दुस्तान में जिस तरह से इन वर्गों और जनजातियों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाया गया है, और दिखया जा भी रहा है, वह किसी भी आजाद और जनतांत्रिक देश के लिए लज्जा का विषय है। आपने बेहद ही महत्वपूर्ण, जनोन्मुखी और संघर्षशील दायित्व संभाला है।

इसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। 'बूधन' हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

धर्म नारायण यादव
जे.एन.यू, दिल्ली

'अरावली उद्घोष' का अंक 57 यहाँ से 26/10 को पोस्ट कर दिया था। आशा है, वह आपको मिल गया होगा। वस्तुत: आपका मिशन आज बहुत ही जरूरी है। इसे एक अभियान-आन्दोलन का रूप दिया जाना चाहिए। आज देश की विभिन्न जनजातियों के साथ-साथ इन विमुक्त, घुमन्तू, खानाबदोश लोगों को समाज की संवेदनशीलता की खास आवश्यकता है, इसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

'अरावली उद्घोष' में हम भी इन घुमन्तू जातियों की पीड़ा को उजागर करने वाले आलेख देते रहना चाहते हैं। इस बारे में हमने कई लेखक बन्धुओं को लिखा था, पर उत्तर एक का भी नहीं मिला। बिना लेखकीय सहयोग के यह संभव नहीं हो पायेगा। अत: आपकी सहयोग वांछनीय है।

हमें आपस में एक दूसरे को सहयोग देते रहना है। अंक दो (अरावली उद्घोष) में इसी क्रम में हमने 'बूधन' (हिन्दी) का विज्ञापन प्रकाशित किया है।

बी.पी. वर्मा 'पथिक'
सम्पादक - 'अरावली उद्घोष'
उदयपुर, राजस्थान

आपकी पत्रिका 'बूधन' का अंक देखने को मिला, पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भारतीय समाज के उन लोगों के बारे में, जो आजादी के 55 वर्ष बाद भी उपेक्षित हैं, गंभीर कार्य करने वाली कोई पत्रिका भी है। इस अंक में आदिवासियों व घुमन्तू लोगों के संबंध में जो सूचनाएँ-लेख उपलब्ध करवाए हैं, वह ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटेन की सामाजिक-मानवशास्त्र की परम्पराएँ अब हमारे यहाँ अपनी ही भाषा में अपना स्वरूप बढ़ रही है। मैंने पूरे अंक को पढ़ा है और प्रत्येक आलेख में वस्तुनिष्ठ दृष्टि और विवेक को महसूस किया है। आपके इस प्रयत्न के दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

राजस्थान में भी ऐसे उपेक्षित घुमन्तू समूह हैं जिन पर छानबीन की जा सकती है।

डॉ. के.सी. शर्मा
चित्तौड़गढ़, राजस्थान

हम एक स्वतंत्र लेखक एवं पत्रकार हैं। हम आपकी पत्रिका से रू-ब-रू व ग्राहक भी बनना चाहेंगे। यदि संभव हो तो एक प्रति भिजवाकर सहयोग करें। हम आपका आभारी रहेंगे। नया साल 2003 आपके लिए शुभ हो। लाए ढेर सारे खुशियाँ, मिट जाए वेदना के काले कोहरे, हो जाए उजाले से चकाचौंध सारा संसार। इसी कामनाओं के साथ।

वैद्यनाथ उपाध्याय
उदालगुड़ी, असम

आपकी पत्रिका की विशेष प्रशंसा सुन यह संस्था भी पत्रिका मंगवाने की इच्छुक हैं। नमूने की अंक नहीं देखने तथा चन्दे की दर से अनभिज्ञ रहने के कारण पत्रिका मँगवाने से मजबूर हैं। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो कृपया उक्त पत्रिका की एक प्रति हमारे संस्था के नाम अवलोकनार्थ भेज दें। पत्रिका आते ही चन्दा एम. ओ. द्वारा शीघ्र भेज दिया जायेगा।

द्वारिका प्रसाद
नालंदा, बिहार

आपका बूधन मिला। लेख पढ़ा, आनंद हुआ। मुझे बूधन की 10 और कापी चाहिए, कृपया भेज दें। अपना संघठन सक्रिय हैं। पत्र लिखते रहिए, सभी को प्रणाम।

डॉ. के.एम. मैत्रि
हँम्पी, कर्नाटक

हम हिन्दी पुस्तकों के सबसे बड़े प्रकाशक एवं वितरक हैं। हमारे यहाँ पर हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाएँ जगह-जगह से आ रही हैं। कृपया आप भी अपनी पत्रिका 'बूधन' का नया अंक भिजवाने का कष्ट करें।

शरद मिश्र
प्रभात बुक सेंटर
जोगेश्वरी (पूर्व), मुंबई

'बूधन' त्रैमासिक के विषय में 'अरावली उद्घोष' में पढ़ने को मिला। मैं भी 'बूधन' का सदस्य बनना चाहता हूँ। कृपया उचित समझें तो मेरे पते से 'बूधन' की एक प्रति भेज दें। अथवा मुझे वार्षिक कितना रुपया भेजना हैं, लिखें। मैं सदस्य बनना चाहता हूँ।

वेद प्रकाश अग्रवाल
सरगुजा, छत्तीसगढ़

आज सुबह आकाशवाणी पर समाचार सुन रहा था। एक बड़ा चौंकानेवाला चुनाव परिणाम आया। ईरान में कट्टरपंथी मुस्लिम पार्टी 'जस्टिस एंड मूवमेंट पार्टी' की सरकार अस्तित्व में आ गई। मामला अकेले ईरान का नहीं है। पूरी दुनिया में जिस प्रकार से धार्मिक कट्टरता बढ़ रही है, उससे सृष्टि का अस्तित्व ही संकटमय लगता है। हालांकि राहत की बात है कि हमारे देश में मतदाताओं ने साम्प्रदायिक शक्तियों को नकारना शुरू कर दिया है, चाहे वे शक्तियाँ जिस दल से संबंध रखती हों। आपका क्या ख्याल हैं।

पत्रिका के आगामी अंक में दुलीना कांड का किसी प्रकार जिक्र करना उचित प्रतीत होता है। विमुक्त व घुमंतू जनजातियों पर भी माँस व खाल के लिए ऐसे आरोप लगते रहते हैं। इस प्रकार दोनों मुद्दे एक-दूसरे से साम्य रखते हैं।

ब्रजेश कुमार सिंह
चंडीगढ़

'हंस' जुलाई, 02 अंक से आपकी पत्रिका के बारे में पता चला। मैं अपना गजल संग्रह प्रकाशक के द्वारा आप तक पहुँचाना चाहता हूँ।

'बूधन' किस तरह की पत्रिका है, कृपया कर इसकी जानकारी दें।

अंजीव अंजुम
दौसा, राजस्थान

मैं बबीना से स्थानांतरित होकर उपरोक्त पते पर आ गया हूँ। मैंने कभी संगठनात्मक कार्य नहीं किया है। अत: नये पाठक बनाना मेरे वश की बात है नहीं। मैं लेख, कविता आदि ही भेज सकता हूँ। एक शिक्षाविहीन समाज नोमेड्स (घुमन्तू) के लिए भी शैक्षिक कार्यक्रम की रचना या उसके प्रचार-प्रसार के लिए संबद्ध राजनीति की रचना भी कर सकता हूँ। अत: उक्त क्षेत्रों में कोई कार्य हो या फिर पत्रकारिता के तदजन्य कोई कार्य हो तो आपकी सेवा कर मैं अपने आपको धन्य समझूँगा।

राघवेन्द्र तिवारी
श्रीगंगानगर, राजस्थान

मैं तमिलनाडु में गत 1939 से हिन्दी प्रचार कर रहा हूँ। हमें हिन्दी साहित्य के अत्याधुनिक विकास और उत्तर के जनजागरण की जानकारी नहीं है। आपसे प्रार्थना है कि आप अपने पत्र 'बूधन' की एक प्रति भेजें, जिससे हम लाभान्वित हो सकें।

टी.एस. राजू शर्मा
रानीपेट, तमिलनाडु

ग्राटन पक्सन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान हैं। वे ब्रिटेन की जिप्सी कौन्सिल के संस्थापक है। रोमानी आन्दोलन के सिलसिले में उन्होंने देश-विदेश का भ्रमण किया है। 'दी डेस्टिनी ऑफ यूरोप्स जिप्सीज' के सहायक लेखक और ब्रिटेन तथा आयरलैंड में रोमा की वर्तमान स्थिति पर इसके पूर्व एक पुस्तिका भी प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए 'माइनोरिटी राइट्स ग्रुप' की ओर से इन्हें विशेष रूप से यूरोप के सभी भागों की यात्रा करने की आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की गयी थीं और इस कार्य के लिए इन्हें नियुक्त किया था। इस विषय पर उन्होंने अनेक लेख लिखें हैं। लेखक के अलावा ये अच्छे कवि भी है। उपरोक्त लेख उन्होंने भारतीय बंजारा सेवा संघ की स्टडी टीम की 1968 की रिपोर्ट के आधार पर लिखा है।

बंजारा और रोमा संस्कृति

■ ग्राटन पक्सन

'अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ' द्वारा सन् 1968 में प्रकाशित 'स्टडी टीम' का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद मुझे यह बात मालूम हुई कि यूरोप में रहने वाले रोमा और स्टडी टीम द्वारा उल्लिखित गोर लोगों की संस्कृति, भाषा और रीति-रिवाजों में अनेक बातों में समानता पायी जाती है।

ऐतिहासिक प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि रोमा और गोर दोनों ही उत्तर-पश्चिम भारत के विशेष रूप से प्राचीन बृहद पंजाब और राजस्थान के मूल निवासी हैं। परंतु जिस प्रकार से गोर समूह के तथाकथित घटना-चक्रों का उल्लेख मिलता है। उन्हें 500 ई. पूर्व 'लमानी' अथवा नमक ढोनेवालों के रूप में पहचाना जाता था। परंतु रोमा के सम्बन्ध में किसी प्रकार के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें अथवा उनके समुदाय को कब से रोमा की संज्ञा प्राप्त हुई, यह भी नहीं कहा जा सकता है। लेकिन एक बात तो निर्विवाद है कि गोर और रोमा संभवतः 7वीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक मुस्लिम आक्रमणकारियों के आतंक से भयभीत होकर अपनी मातृभूमि छोड़ने पर मजबूर हुए।

अनेक अध्ययनकर्त्ताओं एवं निरीक्षकों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट हुआ कि बंजारा और रोमा के बीच अनेक प्रकार की साम्यता दृष्टिगोचर होती है। इसमें वेशभूषा की एकरूपता विशेष तौर से उल्लेखनीय है। रोमा नारियाँ अपने पहनावें में प्रमुख रूप से लाल रंग को अधिक महत्व देती है। शादी जैसे मंगल पर्व पर लाल रंग की ओढ़नी (लोलो डिकलो) पहनना तो रोमा नववधू की परम्परागत संस्कारप्रियता है। विवाह को रोमा 'विजाव अबाव' कहते हैं। रोमा वधू द्वारा शादी के समय लाल रंग का दुपट्टा ओढ़ने के रिवाज ने यूरोप में सफेद रंग का रुमाल अथवा जालीदार स्कार्फ पहनने की प्रथा को जन्म दिया। आज भी मेसेडोनिया (यूरोप) में रोमा महिलाएँ लाल रंग की ओढ़नी (बाचा) पहनती हैं। प्रादेशिकता तथा रंगों की अनुकूलता के कारण ही रंगों में भिन्नता पायी जाती है।

दोनों के वैवाहिक विधि-विधान में बला का साम्य मेरे मन को सबसे अधिक आकर्षित करता है। 'स्टडी टीम' के अध्ययन के अनुसार गोर समुदायों में विवाह अधिकतर आधी रात में ही सम्पन्न होते हैं। उसी प्रकार से रोमा के कतिपय समूहों में भी शादी रात को ही होती है।

बुल्गारिया, मेसेडोनिया और ग्रीस में स्थायी रूप से निवास करनेवाली तथा परम्परागत घोड़ों एवं जीवनोपयोगी चीजों को घूम-घूमकर बेचनेवाली जमात-'झामबासा'- में विवाह की मुख्य दावत रात के 11 बजे आरंभ होती है जो रात के 2-3 बजे तक चलती है और कभी-कभी तो रातभर चलती है।

नवदम्पति द्वारा प्रथम सुहागरात को वधू के कौमार्य की परीक्षा ली जाती है। सुबह के समय फिर से शादी

का बैंड अपने सुरीले स्वरों से वातावरण को अलौकिक बना देता है। बाद में अतिथियों को मदिरा-मांस का भोज दिया जाता है।

विवाह की मुख्य रस्म यह है कि वर का पिता वधू के पिता को एक निश्चित धन-राशि और वधू के समस्त निकटस्थ रिश्तेदारों को उपहार देता है। अमरीका में यह धन राशि कई हजार डालरों तक की रहती है अथवा इससे कुछ कम भी रह सकती है। किंतु यह प्रथा बड़ी सशक्त है और बहुत पुरानी भी है। इसके साथ वधू को अपने परिवार की ओर से भी चीजें भेंट स्वरूप मिलती हैं। इन चीजों में बहुत-सी चीजें उसके वैवाहिक जीवन के लिए उपयोगी रहती हैं, जिन्हें वह अपने साथ पति के यहाँ ले जाती है।

मृत व्यक्तियों के लिए किए जानेवाले सामाजिक समारोह को रोमा बड़े आदर से मनाते हैं। वे निर्धारित तिथियों पर मृतकों की समाधि की पूजा-अर्चना करने सामूहिक रूप से श्मशान में जाते हैं और उसे अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं। कभी-कभी तो मृतक की शांति के लिए उसकी कब्र पर शराब भी उड़ेली जाती है। समाधि की इस प्रकार की पूजा के लिए मृतक व्यक्ति के परिवार से इसकी स्वीकृति प्राप्त की जाती है अथवा उससे सलाह ली जाती है। मगर मृतक-पूजा की यह परम्परा गोर समूह में मत-मतान्तर का विषय है। सभी रोमा का यह मत है कि यदि मृतक व्यक्ति के अंतिम संस्कार विधिपूर्वक नहीं किए गए तो वह प्रेतात्मा बनकर आता है और परिवार के सदस्यों को परेशान करता है। रोमा के कतिपय समूह मृतक की सभी चीजें जलाकर नष्ट कर देने में विश्वास रखते हैं।

'स्टडी टीम' की रिपोर्ट का अध्ययन करते समय मेरी दृष्टि उन प्रार्थनाओं पर अटक गयी जो गोर गोबर की पूजा करते समय कहते हैं। बाल्कन देशों में रहनेवाले रोमा में से कुछ देवी की (जिसे ईसाई मेरिया के नाम से जानते हैं) पूजा करते समय प्रार्थना करते हैं -'ते हाव लाकेरे गुडले कुला' अर्थात् मुझे उसका मधुर प्रसाद भक्षण करने को मिले। अन्त:करण की समग्र एकाग्रता के साथ देवी के सामने यह प्रार्थना की जाती है। कदाचित् दो प्रकार की इन प्रार्थना-पूजाओं में कोई आपसी सम्बन्ध अवश्य ही होगा।

इस बात पर भी मेरा ध्यान गया है कि गोर पंचायतों द्वारा जो दंड दिया जाता है, वह हूबहू रोमानी 'क्रीस' की न्याय-पद्धति से मिलता जुलता है। न्याय समिति अथवा पंचायत को रोमा 'क्रीस' कहते हैं। इस प्रकार का दंड नुकसान अथवा शरीरिक क्षति (परंतु 'आँख के लिए आँख' उस क्रूर न्यायदान का अवलम्बन नहीं) के लिए अपराधी को दिया जाता है अथवा उस पर सामाजिक बहिष्कार डाला जाता है।

'स्टडी टीम' की रिपोर्ट के अंत के पृष्ठों में जो शब्दावली प्रकाशित की गयी है, उसकी मैं चर्चा करना चाहता हूँ। मैं उस शंब्दावली से किसी हद तक निराश हो गया। क्योंकि उसमें प्रयुक्त तीन सौ शब्दों में से लगभग बीस शब्दों के अर्थों से ही मैं परिचित हो सका। तथापि यह शब्दावली सांस्कृतिक महत्व की होते हुए बड़ी रोचक साबित हो सकती है। जिन शब्दों में मुझे समानता मिली वे शब्द प्राकृत तथा मूल संस्कृत भाषा के ही हैं।

गोर बोली	रोमानीज
अंगटा (थम्ब)	- अंग्रुस्टी (ईरानीयन टर्म) (फिंगर, फिंगर-रिंग)
आचो (गुड)	- लाचो
आयो (केम)	- अवाव (आई कम)
भारी (हेविली)	- फारो (हेवी)
छू-मंतर (ब्लेक मेज़िक)	- चोहानी (वुमन वीच डाक्टर)
चाली (गोइंग)	- झेल, जाल (ही गोज)
डोरी (थ्रेड)	- डोरी
दाई-सानी (ओल्ड, वाईज लेडिज)	- दाज (मदर) फूरीदाज (नानी)
गोर (बंजारा)	- गेरो, गोरो (जंटलमन)

गोर से जैसे गोरनी बनी, वैसे ही रोम शब्द से रोमनी (हजबंड, वाईफ) शब्द बना। गाड-की-रोजांगया शब्द

(शेष पेज 8 पर)

देश-देश के ये घुमक्कड़

■ ओवेन सी. केल

भारत में बंजारे उन अनेक समुदायों के रूप में हैं जो घूमते रहते हैं, जिनकी आदतों, पेशे, भाषा आदि के बारे में अध्ययन का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया।

ये नट और बेरिया वगैरह कई नामों से जाने जाते हैं। ये सारे भारत में पाए जाते हैं। राठोड नामक एक जनजाति वर्धा और हैदराबाद के बीच पायी जाती है। पूर्वी समुद्रतट पर नेल्लोर तक बुर्थिया और नेल्लोर के दक्षिण में मैसूर और कर्नाटक तक चौहान और बंत्रु वगैरह हैं।

सुदूर दक्षिण में कुरवैई, कुरु-मेरु, लंबाडी और सुकता मिलेंगे जो बाँस के बुने तंबुओं में रहते हैं। ये कानोजी और दुंबरी जाति वाले हैं। पाका-नटी घुमक्कड़ जाति है जो खुले आकाश के नीचे रहती है।

उत्तर भारत में नट और बेरिये गंगा के किनारे, मालवा, गुजरात और दक्कन में पाए जाते हैं। कंजरी और बाजीगर नामक दूसरी जातियाँ बंगाल, पटना और इलाहाबाद में मिलती हैं।

भारत से बाहर

फारस के कौली, सीरिया के चिंगारी तथा इटली और जर्मनी के जिंगारी और जिगैनर सबकी 'जीवन पद्धति' भारत के घुमक्कड़ों जैसी है। उनके कोई स्थायी निवास स्थान अथवा गाँव नहीं हैं। वे पाँच-दस या पन्द्रह परिवारों की जमात में रहते हैं। साँपों को पकड़ते हैं। तमाशे दिखाकर भीड़ इकट्ठी करना, टोकरियाँ, चटाई, रस्सी आदि बनाना इनका पेशा है। उनका एक मुखिया होता है, झगड़ों के निपटारे के लिए। एक पंचायत होती है तथा वे हिंदुओं की परंपरा के विपरीत अपने मुर्दों को दफनाते हैं।

जिप्सी ज्ञानकोष के अनुसार ''वे समस्त यूरोपीय भूमि तथा पश्चिमी एशिया और साइबेरिया के विशाल भूभाग में घूमनेवाले लोग हैं, मिस्र, अफ्रीका का उत्तरी किनारा, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया में पाए जाते हैं।'' यहूदियों के अपवाद को छोड़कर कोई भी जाति विश्व के इतने बड़े इलाके में नहीं फैली है जितने कि जिप्सी। वे रूस के बर्फानी मैदान से लेकर आस्ट्रेलिया की मरुभूमि, अमरीका उत्तरी और दक्षिणी इलाके तथा मलेशिया और इंडोनेशिया में भी पाए जाते हैं। घुमक्कड़ टोलियाँ अफ्रीका के पूरब और पश्चिमी क्षेत्र से लेकर न्यूजीलैंड तक पहुँच चुकी हैं। बहुत कम लोगों को यह पता है कि इन जिप्सी जातियों का मुख्य उद्गम स्थान भारत है।

खुले आकाश के नीचे पैदा हुए, सूर्य की तपती गर्मी और मानसून की बौछार को जन्म से ही सहते आ रहे ये लोग शारीरिक सौष्ठव से युक्त बहादुर और कठोर श्रम करनेवाले लोग होते हैं। वे पशु-पालक, शिकारी, कंघी, चाकू बनाने का काम करते हैं। उनकी जमात की औरतें बड़े नेत्रोंवाली होती हैं। प्रत्येक जमात के साथ कुछ मवेशी, घोड़े, खच्चर, ऊँट होते हैं।

हरेक झुंड में एक भाट होता है जिसका काम अपने पूर्वजों के कार्यों का वर्णन करना होता है । यह व्यक्ति उत्सवों के मौकों पर प्रमुख अभिनेता की भूमिका निभाता है। वे गिटार जैसा वाद्ययंत्र बजाते हैं तथा नृत्य-संगीत के प्रेमी होते हैं। जिप्सी लोगों ने विश्वभर में अपनी मूल भाषा और परंपरा को सदियों से बचाए रखा है, लेकिन आश्चर्य होता है कि उनके पास इन चीजों का कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं है।

मूल निवास भारत

यूरोपीय जिप्सी मूलतः यूरोप के नहीं हैं, इस बात का सर्वप्रथम विवरण सन् 1763 में सामने आया। उन दिनों भारत के एक मात्र भूभाग मालावार पर 'डच' लोगों का काफी प्रभाव था। अपने मत का प्रचार करने के प्रयास में तीन युवकों को उन्होंने (थियोलाजी) का

अध्ययन कराने लिडन भेजा। यहाँ वे एक हंगेरियाई स्टेफन वल्यी से मिले जो थियोलाजी पढ़ रहा था। बातचीत में उसने पाया कि भारतीय विद्यार्थियों की भाषा उसके निवास स्थान कोमोरिन (हंगरी का एक जिला) के जिप्सी लोगों से मिलती-जुलती है। उसने एक हजार शब्दों की सूची तैयार की और राब के जिप्सियों के समक्ष पेश किया जो उनमें से अधिकांश शब्दों को रूपांतर करने में सक्षम थे।

इसके बाद अनेक यूरोपीय भाषा शास्त्रियों ने जिप्सी उपभाषा का अध्ययन किया। एक जर्मन भाषाविद् श्री एच.एम. ग्रेलमैन ने जर्मनी के घुमक्कड़ों जियुनर की बोली तथा भारतीय प्रमुख बोलियों की तुलना कर निष्कर्ष निकाला है कि जर्मन घुमक्कड़ों की बोली सूरत की बोलचाल से बहुत मेल खाती है।

आज इस बात में तो कोई संदेह नहीं रह गया है कि दुनिया भर के सभी जिप्सियों की भाषा भारतीय मूल की है, साथ ही अनेक ऐसे संकेत उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि जिप्सी भारत से आए थे।

संस्कृत में 'डोब' शब्द का अर्थ नीची जाति के गवैयों और नर्तकों से है। इसी से भारत के 'डोमों' का नामकरण हुआ। 'डोम' तथा 'लोम' शब्दों को दक्षिण-पश्चिम एशिया के जिप्सी अब भी इस्तेमाल करते हैं। उत्तर में उन्होंने इसका अपभ्रंश कर दिया है। भारत के घुमक्कड़ों की जीवन-पद्धति दुनिया के अन्य भागों के 'जिप्सी' जाति के लोगों से बहुत मिलती है। जिप्सी तंबुओं को ढोए चलते हैं जिसे गाँवों के पड़ोस में गाड़कर कुछ दिनों तक अपना जीवन गुजारते हैं। कभी भी अदृश्य हो जाना इनकी आदत है। वे गाने-बजाने के शौकीन और टोकरी, कंघी जैसी छोटी मोटी चीजों को बनाकर बेचते हैं। सूअर का मांस इनका मनपसंद भोजन है। उनकी अपनी कोई मातृभाषा नहीं है, जहाँ रहे वहीं के लोगों की बोली बोलना सीख गए।

रीति-रिवाज में एकरूपता

विदेशी जिप्सियों के रीति-रिवाज, मत-मतांतर, लोक कथाएँ इत्यादि भारतीय घुमक्कड़ों से मिलती हैं। धार्मिक प्रथाएँ और जन्म मृत्यु के बारे में उनकी वर्जनापूर्ण मान्यताएँ बहुत हद तक वैसी ही हैं जैसी भारत में। प्रसव-काल में महिला को वे अपवित्र मानते हैं। प्रसव-क्रिया तंबुओं तथा कारवाँ के बाहर संपन्न होनी चाहिए ताकि प्रदूषण न हो। जिप्सी दाइयाँ जीवन भर अपवित्र मानी जाती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे भारत के ग्रामीण अंचलों में कार्य करनेवाली दाइयाँ। अंतिम सांस ले रहे जिप्सी का कारवाँ से दूर खुले आकाश तले दम तोड़ने के लिए ले जाया जाता है। किसी भी जिप्सी समूह की प्रवृत्ति में दक्षिण की ओर विस्थापित होने की परंपरा नहीं है। सभी दक्षिण अथवा दक्षिणपूर्व के इलाके से विस्थापित होते पाए गए हैं और अमरीका तथा आस्ट्रेलिया के जिप्सी यूरोप से आए होने का दावा करते हैं।

धूप में सांवला हुआ शरीर, गहरे काले केश और पैनी आँखोंवाले इन लोगों को आप सबने कभी न कभी देखा होगा। वे हमारे बीच सदियों से रहते आए हैं और प्रायः सभी देशों से परिचित हैं। फिर भी वे आदिम लोगों की तरह हैं और किसी भी किस्म की सरकार उनकी जीवन पद्धति बदलने में कामयाब नहीं हो सकी। उन्हें घुमक्कड़ की जिन्दगी पसन्द है, हमेशा घूमते रहना।

इस बात का सबसे बड़ा सबूत है कि शेष विश्व के जिप्सी भारत से विस्थापित हुए, उनकी भाषा रोमानी है, जहाँ भी वे गए वहाँ की भाषा के अनुरूप अपनी बोली में परिवर्तन करते गए, लेकिन मूल बोलचाल से समानता बनी रही।

निम्नलिखित शब्दों में समानता ढूँढ़ने में भाषाशास्त्र के अधिक अभ्यास की जरूरत नहीं।

अंग्रेजी	रोमानी	हिंदी/संस्कृत
वन	एक	एक
टू	दुई	दो
थ्री	त्रीन	तीन
फोर	स्टार	चार
टेन	देस	दस
हंड्रेड	सिल	शत
ट्वंटी	बीस	बीस
मैन	मानुस	मनुष्य
यंग	जुवेल	युवक
वीमैन	जुअर	युवती
हैंड	वस्त/आत	हस्त
कैट	ब्लारी	बिलाड/बिलार
ड्रंक	पियेल	पिवती
कम	आलो	आगत/आया
मिल्क	तुड	दुग्ध
हेयर	बाल	बाल
इयर	कान	कान
नोज	नाक	नाक
आई	आक	आँख/अक्ष
ब्लैक	कालो	काला

उनका कोई धर्म नहीं है। धर्म के नाम पर जो भी है वह अंधविश्वास, सहनशीलता तथा स्थानीय रीति-रिवाजों, प्रथाओं का मिश्रण है।

जिप्सी जाति ने अपने सांस्कृतिक प्रवाह को बचाकर रखा है। भविष्यवाणी करना पैसा कमाने का जरिया होने के साथ-साथ इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इससे जादूगरी का माहौल पैदा किया जा सकता है। जो बाहरी लोग उन्हें तंग करते हैं अथवा दुर्व्यवहार करते हैं उन्हें अभिशप्त करना या डराने का अस्त्र भी होता है। वे आपस में इस विद्या का कभी इस्तेमाल नहीं करते।

परस्थिति से मजबूर होकर वे जीवन के निर्वाह के लिए कई दूसरे स्रोतों का सहारा लेते हैं। खेतों से या उनके मालिकों से ईंधन, अनाज, चारा, सब्जी, फल, मुर्गा इत्यादि लेकर काम चलाते हैं। इस तरह से पूरे विश्व को वे सार्वजनिक क्षेत्र मानकर चलते हैं।

यद्यपि उन्होंने समय और स्थान के अनुरूप अपनी जीवन शैली बनायी है, उनका अपना कानून और नैतिक आचार-संहिता बरकरार रही है।

प्रकृति-प्रदत्त सीमाओं और धार्मिक बंधनों को तोड़ने की प्रक्रिया से गुजरने के बावजूद वे समान प्रथाओं से जुड़े हुए हैं। जीवन निर्वाह के उनके एक समान स्रोत-साधन हैं और उनके पास प्राचीनता की पूंजी है। फिर भी इन घुमक्कड़ों के बारे में दुनिया बहुत कम जानती है और वे भी व्यवहारत: अपने बारे में पूर्णत: अनभिज्ञ हैं। ■

(अंग्रेजी से अनुवाद : अशोक ओझा)

(मुम्बई से छपनेवाले 'बंजारा' पाक्षिक, 15 जुलाई, 1975 से साभार)

बंजारा और रोमा संस्कृति

(पेज 5 का शेष)

समुच्चय पैंट्स-ट्राउजर्स के लिए प्रयुक्त किया जाता है जबकि इसके लिए रोमानीज प्राचीन मध्य एशियायी शब्द-'सोसतेना' जिसे घुड़सवारी करने वाले बंजारा बोलते थे और जो उत्तर भारत में दाखिल हुए थे-उदाहरणर्थ-आर्य।

गूणो (बेग) – गोनो
गडकी (ड्रेस) – गाड (शर्ट)
हरो (ग्रीन) – चार (ग्रास)
कंधी (कोम्ब) – कंगली
कनिया (इयर रिग्ज) – चाजना
कूण (बहू) – कोन
खादी (इट) – हाव (आई इट)
लमान (साल्ट सेलर) – लोन (साल्ट)
मारो (माइन) – मीरो, मुरो, म्रो, मो
निकाळीयू (पास थ्रु) – नाकाव (आई पास)
पुंद (बटोक) – बूटो (थाय), बुल (बटोक)
पीदी (ड्रंक) – पीबे (ड्रिंक)
रूपो (सिल्वर) – रूपनो (एडजे-सिल्वर)
सुई (निडल) – सुव
सासू (मदर-इन-लॉ) – सासुइ
तू (यू) – तू
तमेन (टू यू) – तू में गे (अनेळव-टू यू)
■

(मुम्बई से छपनेवाले 'बंजारा' पाक्षिक, 1 दिसम्बर, 1976 से साभार)

(श्री मोतीराज राठोड बंजारा जनजाति में पैदा हुए। इन्होंने एम. ए. हिन्दी, एम. ए. मराठी तथा एम. फिल की शिक्षा प्राप्त की। वर्तमान में आप वसन्तराव नाईक महाविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र में प्राध्यापक हैं। आपने बंजारा समाज, संस्कृति और लोक साहित्य पर हिन्दी व मराठी भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे हैं। विमुक्त जातियों पर इन्होंने 'भटक्या विमुक्तांचा जाहिर नामा' पुस्तक मराठी में लिखी है।)

अपराधी जनजाति विधान और परिणाम

■ प्रो. मोतीराज राठोड

व्यक्ति जन्म से और जाति से अपराधी होता है, ऐसा अधिनियम सन् 1871 में बनाया गया, जिसे 'अपराधी जनजाति अधिनियम' (क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट) कहते हैं। दिल्ली पर अधिकार जमाने के बाद अंग्रेज शासन ने सम्पूर्ण भारत में अधिकार जमाना शुरू कर दिया। एक तरफ इनके पास छोटे बड़े राजाओं ने शरण ले ली और उनकी भूमि पर पूर्ण अधिकार जमा लिया और आगे बढ़ते गये। जिस भाग पर कब्जा कर लिया, उस भाग में व्यापार करने लगे और उसे अधिक प्रयत्न द्वारा बढ़ाने लगे। दूसरी तरफ, जमींदार, तालुकेदार, मामलेदार, जागीरदार लोगों की जमीन महसूली के नाम से कठोरता से करना शुरू किया, जिससे गाँव के भागों में अन्याय और अत्याचार बढ़ने लगे। नियम और व्यवस्था पूर्णत: ठप्प हो गई। जिसका लाभ डाकू टोली ने उठाया। दिन में ही डाका पड़ने लगा। उत्तर, पूर्व और पश्चिम भारत में प्रवास करने वालों को भय उत्पन्न होने लगा। अशांत परिस्थिति पैदा होने से सन् 1857 में विद्रोह हो गया। समस्त प्रकार के उपाय किए गए जिससे कानून व्यवस्था स्थापित हो जाए जिसके लिए 'अपराधी जनजाति विधान' बनाया गया, जिससे पेट के लिए गाँव-गाँव भटकने वाली जनजातियों की बलि चढ़ने लगी। अंग्रेजी शासन ने भटकनेवाली 198 जनजातियों को जन्म के आधार पर अपराधी ठहराया। किसी विशेष जनजाति में जन्म लेने के कारण, बिना किसी अपराधके, विधान के अनुसार अपराधी ठहराया जाने लगा। आगे चोरी करो या न करो, किन्तु मृत्यु तक अपराधी, इस प्रकार का जंगली विधान दुनिया में कहीं नहीं है जो अपने देश में लागू किया गया।

भटकनेवाली जनजाति को अपराधी जनजाति मानकर घोषित करना किसी भी प्रकार से न्यायोचित नहीं है। वास्तव में, स्थिर जनजातियों में भी अपराधी प्रवृत्ति हो सकती है। नीची जाति मानकर वे भटकते हैं। वर्ण व्यवस्था के अनुसार इन्हें अपराधी करार दिया। अंग्रेजों ने 'अपने ही बालों से अपना गला काट लिया।' नियम और व्यवस्था समिति के एक सदस्य जे.व्ही. स्टीफन ने 'अपराधी जनजाति विधान' का समर्थन करते हुए कहा।

The special feature of India is the caste system. As it is traders go by castes: a family of carpenter will be carpenter, a century or five centuries hence, if they last so long. Keeping this in mind the meaning of professional criminal is clear. It means a tribe whose ancestors were criminal from times, immemorial who are themselves, defined by the usages of caste to commit crime and whose descendents will be offenders against law, until the whole tribe is exterminated or accounted for in the manner of the *thugs*. When a man tells you that he is an offender against the law, he has been so from the beginning, and will be so to the end, reform is impossible, for it is his trade, his caste, I may almost say his religion to commit crime.

स्टीफन का तर्क आधारहीन और न्याय व्यवस्था को बदनाम करने के लिए है। फिर अपराधी जनजाति विधान में सन् 1897 में संशोधन किया कि अपराध करने की प्रवृत्ति वंशज हैं। जन्म से, जाति से, धर्म से और वंश से अपराध होता है। ऐसा समझकर कठोर त्रास और दु:ख देना शुरू किया। और इस तरह इन जनजातियों को सभी प्रकार से अपंग कर दिया। किसी एक जाति में दो-चार अपराधी हुए, तो सम्पूर्ण जनजाति को चोर ठहरा दिया, ऐसा जंगलीपन किया। इसके कारण आज देश में लगभग 10 करोड़ लोग मानवीय जीवन और मानवीय अधिकार का उपभोग करने से वंचित हैं। इस कानून के कारण, इनका भौतिक और मानसिक जीवन नष्ट हो गया है। ऐसा अमानवीय जंगल का विधान आज भी अपने देश में चालू है, जिसका परिणाम आज भी यह विमुक्त जनजाति भोग रही है। इस 'अपराधी जनजाति' अधिनियम के रद्द करने के पश्चात भी यदि किसी जाति को अपराधी इंगित करने का विरोध करने को अपराध माना जाता रहेगा। तब तक इस बड़े जनसमूह का निमियता से मानवीय जीवन जीना संभव नहीं है।

ऐसा विधान कलंक बना। अपराधी जनजाति विधान और उसका उसे क्रियान्वित करने की धारा 360 को पढ़ने से लोगों को क्रूरता और उनके क्रूर तरीकों का अनुभव होता है। एक-एक धारा शरीर में आग लगाती है और मन को विचलित कर देती है। यह यातना से युक्त जन्मे लोग अपना इतिहास बोलते हैं कि, हम किस काल में रहते हैं, किस युग में हम हैं जिससे शर्मिंदा हैं। इसकी धारा 3-12-11 के अनुसार, अपराधी घोषित करने के लिये, जनजाति के लोगों को स्वयं पुलिस पाटिल के पास पंजीयन कराना पड़ता है।

धारा तीन के अनुसार

Notification of Criminal Tribes: If the provincial government has reason to believe that any tribe, gang or class of persons or any part of tribe, gang, class is addicted to the systematic commission in the Official Gazette declared that such tribe, gang or class or as the case may be that such part of the tribe, gang or class is crimial tribe for the purpose of this Act.

उपस्थिति पद्धति

पंजीयन रजिस्टर में दानों हाथों के अंगूठे लगाये जाते हैं और चेहरे का वर्णन दिया जाता है। उपस्थित पद्धति की धारा 10 के अनुसार पुलिस पाटिल के पास उपस्थित होना पड़ता है। इस पद्धति की धारा 10 के अनुसार उपस्थिति का समय रात्रि 11 बजे और फिर रात्रि तीन बजे जिसमें वे सो नहीं सकते हैं। किसी भी कारण से उपस्थिति चूकना नहीं चाहिए। अगर उपस्थित नहीं हुए तो 500 रुपये का दण्ड विधान धारा 28 के अनुसार भरना पड़ता है।

बिना वारंट के गिरफ्तारी

धारा 106, 107, 109, 111 के अनुसार अपराधी जनजाति समूह में, कहीं भी चोरी हो, किसी भी सबूत के बिना, जाति अपराधी समझकर बिना वॉरंट के गिरफ्तारी करते हैं। अपराध स्वीकार करने तक उस पर अमानवीय क्रूरता करते हैं और मारते हैं। और मारने की धमकी के दबाव से इनमें अपराध स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी।

प्रविष्टि पद्धति

इस विधान की धारा तीन के अनुसार अपराधी का पंजीयन होने पर, पंजीयन रजिस्टर से नाम किसी का कोई भी कम नहीं कर सकता। एक बार चोर तो हमेशा चोर। गाँव में प्रवेश करने पर उनके परिवार, जानवरों, बर्तनों आदि सबका पंजीयन रजिस्टर में पुलिस पाटिल करता है। गाँव छोड़ने पर जानवर के समान प्रविष्टि करनी पड़ती है। उस प्रविष्टि के लिये सब का पंजीयन आवश्यक है और दूसरे गाँव में जाने पर वहाँ के पुलिस पाटिल इस समूह को कब्जे में लेकर जाँच करके ऐसा

टिप्पणी प्रत्येक पुलिस पाटिल लिखता है। गाँव में प्रवेश बिना प्रविष्टि के कोई ठहर नहीं सकता है। रात-बे-रात कभी-कभी सीमा पर रात गुजारनी पड़ती है।

किसी भी दु:ख में ना बोलना और ना ही चिल्लाना

धारा 23 पूरी तरह से क्रूर और जंगली धारा है, जिससे व्यक्ति जीवन पर्यन्त भयभीत रहता है। कहावत है कि जब जन्म लिया है तो भोगो क्योंकि यह भय हमेशा रहता है कि, कब पुलिस आएगी और पकड़ कर ले जाएगी।

The Criminal Tribes Act, 23 declared that any person belonging to the criminal tribes convicted once for any offence under I.P.C. specified schedule I, if convicted of the same offence for the second time, will be punished with imprisonment for 10 or not less than 7 years and on third or any subsequent conviction with transportation for life. This section contemplates futher punishment also.

कोर्ट तक को अधिकार नहीं

धारा 5 और 3-11-12 में, अपराध किया या नहीं, इसकी जाँच-पड़ताल करने का अधिकार न्यायालय के पास भी नहीं है। इस धारा के अनुसार अपराधी को सजा देना न्यायालय का काम है। मैं अपराधी नहीं हूँ ऐसा बोलना नहीं है। ऐसी बात कोई नहीं सुनता है। अपराधी जनजाति के आधार पर होते हैं ऐसा विशेष अधिकार जिला का अधिकारी को दिया है। किस जाति, कौन-सा चोरी करता है, कहाँ और कैसे चोरी हुई, किस जाति को प्रथम गिरफ्तार करना है, इन सब बातों की जानकारी गजट में की जाती है।

पुलिस की क्रूरता से मरने तक छुटकारा नहीं है। अपराध स्वीकार करके सजा भोगने की प्रवृत्ति इन जनजातियों में बढ़ने लगी। चोरी करके सजा भोगकर बाहर आना और फिर चोरी करना, समझकर सन् 1924 में 'सेटलमेंट एक्ट' इस जनजाति के लिए बनाया गया। इस विधान की धारा 16 के अनुसार, अपराधी जनजाति के व्यक्ति को कांटे वाले तारों से गुंथे हुए परिसर में रखते हैं। किसी-किसी को दोहरे काँटे वाले तारों से गुँथे हुए परिसर में रखते हैं। और शाम को जाँच करके, तारों के परिसर में ले जाते हैं और अपराधी समझकर इन पर उंगली उठाते हैं।

अपराधी जनजाति विधान में परिवर्तन

अपराधी जनजाति विधान अमानवीय है, इसलिए इसे नष्ट करना चाहिए, इस प्रकार का प्रयास व्ही. राघवय्या, पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया। अन्त में 31 अगस्त, 1952 में अपराधी जनजाति विधान पूर्णत: रद्द नहीं किया, किन्तु उसमें परिवर्तन किया, जिसे स्वभाव से अपराधी (हेबींचुअल ऑफेंडर्स एक्ट) के नाम से पहचाना जाता है। अपराधी जनजाति विधान पूर्णत: जाति के आधार पर था। सन् 1871 से सन् 1952 तक यानी 81 वर्ष यह जंगल का कानून लागू रहा। यह काला जंगल का कानून पूर्णत: रद्द न कर, अभी भी अपराधी जनजाति की वही व्यवस्था कायम है। अपराधी जनजाति कानून का परिणाम ये जनजातियों आज भी भोग रही हैं।

अपराधी जनजाति विधान और परिणाम

अपराधी जनजाति विधान से भटके और आनेवाली विमुक्त जनजातियों के मानवीय जीवन पूर्णत: समाप्त हो गये। इस कानून के द्वारा इस जनजाति के सामने अलग-अलग समस्याएँ बन गई। अन्त में, जनजाति को अपराधी समझ के बदनाम कर दिया गया।

पारंपरिक व्यवसाय छूट गया

भटकने वाली जनजाति पेट भरने के लिए क्या पारम्परिक व्यवसाय कर सकती है। जमीन से पत्थर चीरकर निकालना, पत्थर पर उसका आकार बनाना, बांध काम में बेलदार बनना, कैकाडी, गाँव में उपयोगी बाँस की सीकों की टोकरी बनाना, लोहे के औजार, भैंस-गाय पालन, जंगली जड़ी-बूटी बेचकर पेट पालना, शारीरिक

खेल लोगों को दिखाकर पेट पालना, लोगों से भीख माँगकर खाना अपराधी जनजाति कानून से पुलिस और पुलिस पाटिल की आखों के सामने रहने से जीवन कटु लगने लगा, जिसके कारण पारंपरिक व्यवसाय छूट गया। अपराधी जनजाति कानून के कारण व्यवसाय ठप्प पड़ गया। भीख माँगने अथवा चोरी करने को मजबूर हो गये।

भटकने की प्रवृत्ति

पहले गाँव से गाँव भटकते हैं। गाँव में अगर काम मिलता है तो दो-दो महीने वहाँ रहना पड़ता है। किन्तु अपराधी जनजाति विधान के अनुसार तीन दिन से अधिक वह एक गाँव में नहीं रह सकता है। एक स्थान पर ठहरने पर पाबंदी होने से स्थिरता पैदा करने के साधन एक स्थान पर नहीं होते हैं। इस कारण से अपराधी जनजाति कानून लगने के कारण उन्हें लगातार भटकना पड़ता है। बाद में यह भटकना इनकी संस्कृति बन गई, धर्म बन गया, स्थिर जीवन जीने का अधिकार अपराधी जनजाति विधान ने नष्ट कर दिया।

प्रथा बन गई

भटकने वाली जनजाति चोर अपराधी होते हैं, जिन्हें पुलिस पकड़ के ले जाती है। यह जनजाति अपराध करती है, ऐसा गाँव के लोग समझने लगे। आगे इस जनजाति को देखने का यही दृष्टिकोण बन गया। ऐसी प्रथा बन गई कि इस जनजाति से दूर रहना चाहिए। इस जनजाति से लोगों को मिलने का काम नहीं, ऐसा दृष्टिकोण ग्रामीण भाग में तैयार हो गया और इसके कारण अपराधी जनजाति विधान बन गया। आज भी कहीं भी चोरी होती है, इन लोगों को ही पकड़ना है ऐसा लोगों का विश्वास बन गया।

अपमानित जीवन

समाज उन्हें मिलने नहीं देता है। सरकार चोर समझकर उंगली उठाती है। सामाजिक कलंक और कानून के अनुसार अन्याय से, अपराधी जनजाति को अपमानित जीवन जीने पर मजबूर होना पड़ा। जीवन भर मानव जीवन नहीं जी सकते। अपराधी जनजाति विधान ने इनकी रोजी-रोटी मिटा दी। धीरज, सुख, शांति और आत्मविश्वास कानून के अनुसार नष्ट कर दिया। इनको पूर्णत: शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपंग कर दिया।

अपराधी किसने बनाया

अपराधी जनजाति विधान ने ही अपराधी निर्माण किया। चोरी करो या न करो, जन्म के आधार पर अपराधी लोगों की संख्या बढ़ने लगी। लोगों के सुधार के लिए अथवा अच्छे जीवन जीने के लिये संविधान के नियम बने हैं। स्थिरता उत्पन्न करने का साधन नहीं है। काम कोई देता नहीं है। पेट के लिये भीख माँगने के सिवाय अथवा चोरी करने के सिवाय इनके सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं है। अपराधी जनजाति कानून ने इनको खत्म कर दिया है। अंत में अपराधी जनजाति कानून ने अपराध बढ़ाया है, अपराधी निर्माण किए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 14 के विधान के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति समान है। अपराधी प्रवृत्ति किसके लिए? प्रवृत्ति किसने पैदा की? अपराधी जनजाति समझकर इस जनजाति को तकलीफें दीं। अपराधी जनजाति को अपराध करने की प्रवृत्ति जिस विधान से बनी, उसे पूर्णत: रद्द नहीं किया गया। कानून में परिवर्तन अथवा संशोधन से, अपराधी समाज के रूप में जनजातियों को देखना और उंगली उठाने के दृष्टिकोण को बदलने के लिए शासन द्वारा परिवर्तन न करने से यह विधान आज भी चालू है। इसलिए विधान पूर्णत: रद्द करना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 14 के विधान के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार मिलना चाहिए। फिर अपराधी प्रवृत्ति का विधान किस लिए? किसके लिए? इस प्रकार अपराधी जनजाति विधान और उसके बदले हुए स्वरूप अपराधी 'हैबीचुअल ऑफेंडर्स एक्ट' को पूर्णत: रद्द करना चाहिए। तभी यह जनजाति मानवीय जीवन और मानवीय अधिकारों का उपभोग कर सकेगी। किन्तु ऐसा विधान नहीं बनाया जाए जिससे उन पर जन्म के आधार पर अपराधी जनजाति समझकर तकलीफें दी जायें। ■

('भारत बंजारा' से साभार)

पालि, संकर-संस्कृत-प्राकृत और बौद्ध दर्शन को महापंडित राहुल सांकृत्यायन का अवदान

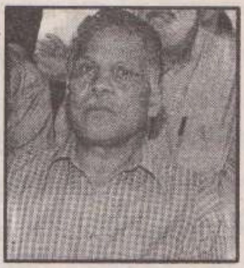

■ डॉ. संघ सेन सिंह

प्रस्तावना

पश्चिम में (योरोप की धरती पर) आई उद्योगिक[1] क्रांति ने शोध व अनुसंधान के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात किया। उस समय अनेकानेक अन्वेषक हाथों में औजार लिये घटना-पटल पर प्रकट हुये और जहाँ भी हाथ पड़ते वहाँ से टुकड़ों-टुकड़ों में प्राप्त जानकारियों को एकत्रित करने में जुट गये। नई सामाजिक व्यवस्था को पूरी खुराक पहुँचाने के उद्देश्य से पश्चिम की उदीयमान शक्ति के लिये यह आवश्यक हो गया कि वह ज्ञान के नित-नये क्षेत्र खोज निकाले। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि इससे पहले की कोई भी सामाजिक व्यवस्था प्रक्रिया और गति की दृष्टि से इस उदीयमान व्यवस्था से मुकाबला नहीं कर सकती थी। इस परिवर्तन को एक प्रकार का नवजागरण कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा, जो पहले तो पश्चिम में प्रकट हुआ और बाद में उनके उपनिवेशों में। पश्चिमी देशों के शासको ने अपने सांम्राज्यों के विस्तार के साथ-साथ ऐसे विद्वत्-वर्ग को प्रोत्साहन देने की सोचा जो नये-नये विषयों में खोज कर सकें और अपने-अपने उपनिवेशों से प्राप्त ज्ञान के भंडार को उस दिशा में मोड़ सकें और उससे प्राप्त ज्ञान-संपदा को अपने-अपने देशों व उपनिवेशों में उपयोग करके प्रगति मार्ग पर और भी द्रुत गति से बढ़ सकें। नई-नई खोजों से सांम्राज्यवादियों का हौसला और भी बुलन्द हो चला और वे इस दिशा में अपनी उपलब्धियों को और ठोस आधार देने में जुट गये। यहाँ इस संबन्ध में यह बात जान लेना आवश्यक है कि उस समय प्राचीन भारतीय विद्या (Indology) के क्षेत्र में कुछ विद्वान् कार्य में संलग्न थे, जिनमें मुख्य थे – विलियम जोन्स (1746-94), एच०टी० कोल ब्रूक (जो कोलकाता में 1782 में पहुँचे थे), क्रिश्चियन लासेन (जिन्होंने प्राचीन भारतीय विद्या पर अपना ग्रन्थ जर्मन भाषा में 1847 में प्रकाशित किया था) आदि। प्रिंसेप (1799-1843) और कनिंघम जैसे अन्वेषकों और पुरातत्त्वविदों द्वारा बौद्ध धर्म से संबन्धित स्थलों की खोज ने इस क्षेत्र में काम करने वाले भारत के उदीयमान विद्वानों में इस दिशा में अत्यधिक रुचि पैदा कर दी। उनमें से कुछ तो प्रारंभिक दौर में अपने पश्चिमी आकाओं की सेवा के बहाने इस क्षेत्र में शोध व अनुसन्धान की दिशा में उतरे थे।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस दौर में भारत के विद्वत् वर्ग पर पश्चिम की उदीयमान सामाजिक व्यवस्था का एक सुखदाई और शुभदायक प्रभाव भी पड़ता नजर आया। इसने प्राचीन भारतीय विद्या के क्षेत्र का दरवाजा खोल दिया और इस प्रकार भारतीयों में एक नई रोशनी डाल दी। विकास का यह क्रम उस अन्धकार को दूर करने में तत्पर हो गया, जिसने सदियों तक भारतीय विद्वत्-वर्ग के चेहरों पर पर्दा-सा डाल रखा था और जो अन्धविश्वासी और स्वार्थ-परक ब्राह्मणवाद से त्रस्त था। विकास के इस दौर का आभास इस बात से होता है कि कुछ ऐसे विद्वान् और समाज-सुधारक प्रकट हुये, जिन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का बीड़ा उठाया और इस प्रकार समाज में एक बदलाव लाने का प्रयास किया। राजा राम मोहन रॉय[2], ईश्वर चन्द्र विद्यासागर[3] आदि उनमें अग्रणी थे।

लंदन में पालि टेक्स्ट सोसाइटी की स्थापना से प्राचीन भारतीय विद्या के क्षेत्र में शोध करने वाले पश्चिमी विद्वानों के कार्यों को गति मिली। यही नहीं विकास के इस क्रम ने इस क्षेत्र में काया-पलट कर दिया और श्रीलका, म्यन्मार आदि देशों से प्राप्त पालि ग्रन्थों के

प्रकाशन को एक नया मोड़ मिला और कुछ ही समय में तिपिटक और तिपिटकेतर अनेक ग्रन्थ प्रकाश में आ गये। समय के साथ उनमें से कुछ ग्रन्थों के अनुवाद भी हुये और वे प्रकाशित भी हुये।

बौद्ध ग्रन्थों का एक–एक करके प्रकाशित होना बौद्ध विद्या और शास्त्र के क्षेत्र में आये एक नये दौर की ओर सँकेत था। एच० कर्न का 'मेनुएल आफ इंडियन बुद्धिज्म' (1896), रीस डेविड्स और उनके सहयोगियों द्वारा संकलित और संपादित 'पालि–इंगलिश डिक्शनरी' (पालि–अंग्रेजी शब्दकोश) स्वयं रीस डेविड्स द्वारा लिखित 'बुद्धिस्ट इंडिया' (लंदन, 1903), 'बुद्धिज्म: इट्स हिस्ट्री एण्ड लिटरेचर (लंदन, 1910), आदि, मेबिल बोड का पालि लिटरेचर ऑफ बर्मा' (लंदन 1909) आदि के प्रकाशन से बौद्ध विद्या के क्षेत्र में क्रान्ति –जैसी स्थिति आ गई, जिसमें पालि भाषा, साहित्य और परंपरा को सर्वाधिक प्रोत्साहन मिला। पूर्व उल्लिखित महान् विद्वानों द्वारा अंकुरित उत्साह ने विकास की रफ्तार को तीव्र गति दी और अगली पीढ़ी के विद्वान् एक-एक करके मैदान में उतरने लगे, जिनमें प्रमुख थे एम० विन्टरनिट्ज (हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, 1923), बिल्हेम गायगर (पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज-अंग्रेजी अनुवाद 1943) और उन जैसे कई और। भारत में बौद्ध विद्या के क्षेत्र में अन्वेषण का कार्यभार जिन कन्धों पर पड़ा, उनमें प्रमुख थे राजेन्द्रलाल मित्र, शरत्चन्द्र दास और सतीश चन्द्र विद्याभूषण, जिन्होंने बौद्ध विद्या के क्षेत्र में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये और अपने कितने ही शिष्यों को इस ओर अग्रसर किया।

कलकत्ता में 1892 में बुद्धिस्ट टेक्स्ट सोसाइटी की स्थापना के साथ बंगाल में बौद्ध विद्या के क्षेत्र में क्रमबद्ध कार्य प्रारंभ हुआ। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री के अन्वेषणों और प्रकाशित ग्रन्थों का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा उस समय के उदीयमान युवा विद्वानों पर जो इस क्षेत्र में उड़ान भरने के लिये अपने-अपने परों को मजबूती प्रदान कर रहे थे। इस विकास के क्रम में एक विशेष बात यह घटी कि भारत के प्राचीन गौरव के उद्धार की धुन और बौद्ध विद्या, संस्कृति और परंपरा को पुनरुज्जीवित करने की उत्कट अभिलाषा का संगम सा हो गया और अनेक विद्वान् जाने-अनजाने एक दूसरे के पूरक बनते गये। युवा स्वंतत्रता-सेनानियों ने प्राचीन भारतीय विद्या के क्षेत्र में हुए विकास और उसके प्रचार में अपनी भावनाओं की प्रतिध्वनि पाई और उस ओर अपने योगदान में बड़ी तत्परता दिखाई। भारत की प्राचीन शास्त्र-संपदा को उद्घाटित करना और उसे विश्व जन-मानस के सामने अतिरंजित रूप में पेश करना उस युग का फैशन बन गया। इसी बीच बीसवीं सदी की पहली पच्चीसी में सर आशुतोष मुखर्जी के कुलपतित्व-काल में कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालि-विभाग अस्तित्व में आया और उसके साथ ही बौद्ध विद्या के क्षेत्र में शोध व पठन-पाठन का एक नया दौर प्रारंभ हुआ। शान्ति निकेतन में तान युन शाँ के नेतृत्व में चीन-भवन की स्थापना औरं विकास बौद्ध विद्या के क्षेत्र में वरदान साबित हुये। प्राय: इसी समय पटना में काशी प्रसाद जायसवाल, जिनको राष्ट्रीय विचारों के कारण कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक के पद से हटा दिया गया था, प्राचीन भारतीय विद्या के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दर्जनों युवा विद्वानों को शोध व अनुसन्धान की दिशा में प्रशिक्षण देकर दे रहे थे। कितने ही उदीयमान विद्वानों को आर्थिक सहायता पहुँचा कर वे प्राचीन भारतीय विद्या (इंडोलॉजी) को निरंतर पुष्ट कर रहे थे। भदन्त आनन्द कौसल्यायन, जिनका व्यक्तित्व बौद्ध जागरण व शोध पूर्ण लेखन कार्य का मूर्त रूप था, भिक्खु जगदीश कश्यप, जो बाद में नव नालदा महाविहार (जिसका प्रारंभिक नाम नालन्दा पालि इंस्टीट्यूट था) के संस्थापक-निदेशक (डाइरक्टेर) के उच्च पद पर आसीन हुये, आदि विद्वान् इसी युग की उपज थे, जिनको अनेकों विद्वानों के सानिध्य में बैठकर काम करने और प्रशिक्षण ग्रहण करने का अवसर मिला था। किन्तु केदारनाथ पांडे, उर्फ स्वामी रामोदार, उर्फ रामोदार सांकृत्यायन, उर्फ राहुल सांकृत्यायन उन सब में निराले थे, जिन्होंने जीवन के कई क्षेत्रों में उपनी प्रतिभा का जल्वा दिखाया और लोगों को चकाचौंध कर दिया। उच्च कोटि के भाषाविद्, पुराविद्, बौद्ध विद्याविद् आदि के साथ-ही-साथ वे स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अपने जमाने

के युवा नेताओं की अगली पंक्ति में थे। जनता के दु:खों, उनके बहुविध शोषण, उनकी हृदय-विदारक विपन्नता के प्रति अत्यन्त संवेदनशील राहुल जी उनकी लड़ाई को अपनी लड़ाई मानकर मैदान में कूद पड़े। किसान मजदूर आन्दोलन में उनकी भागीदारी अगली कतार वाली थी। अब प्रश्न उठता है कि राहुल जी उस मुकाम पर कैसे पहुँचे। यह विषय बड़ा लंबा और व्यापक है। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये उनके जीवन के प्रारंभिक वर्षों से लेकर उस मुकाम तक पहुँचने तक की लंबी यात्रा की यात्रा करनी पड़ेगी। इस विषय में इस अवसर पर ज्यादा विवरण प्रस्तुत करना संभवत: विषयान्तर हो जायगा, क्योंकि यहाँ पर वर्तमान लेखक का मुख्य उद्देश्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जीवन के उस पक्ष को ही उद्घाटित करना है जो पालि, संकर-संस्कृत-प्राकृत और बौद्ध शास्त्र के उन्नयन में लगा हुआ था।

लुप्त ग्रन्थों की खोज, उद्धार, अनुवाद, संशोधन, टिप्पण और सम्पादन

राहुल जी के जीवन का यह अध्याय उनके प्रथम श्रीलंका प्रवास (मई 1927 से जनवरी 1929 तक) से प्रारंभ होता है। किन्तु इसके लिये उनकी तैयारियाँ पहले से ही थीं। वे धम्मपद के कुछ नागरी संस्करणों व छोटे-मोटे हिन्दी अनुवादों से परिचित हो चुके थे। महाबोधि सोसाइटी (कलकत्ता, सारनाथ) की सहायता से सतीश चन्द्र विद्याभूषण द्वारा संपादित कच्चान व्याकरण उनके हाथ लग गया था। बांगला भाषा में बौद्ध साहित्य पर छपी पुस्तकों और जगज्जोति पत्रिका से वे परिचित हो चुके थे। 1922 में गया (बिहार) में हुये कांग्रेस अधिवेशन से पहले बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति में बोध गया के जगत् प्रसिद्ध महाबोधि मन्दिर के स्वामित्व को बौद्धों को सौंपे जाने के विषय में राहुल जी प्रस्ताव पास करवा चुके थे। किन्तु गया के अखिल भारतीय अधिवेशन में वे उस प्रस्ताव को पास कराने में असफल रहे।

राहुल जी का प्रथम श्रीलंका प्रवास मई 1927 में प्रारंभ हुआ। वे उसके बाद के 19-20 महीने श्रीलंका के विद्यालंकार परिवेण में संस्कृत के अध्यापन का कार्य करते रहे। राहुल जी ने वहाँ के छात्रों की सुविधा के लिये प्रारंभिक संस्कृत पाठमाला[(4)] भी तैयार की। इस बीच उन्होंने 18-20 छात्रों और कुछ अध्यापकों को संस्कृत (भाषा व व्याकरण), काव्य, दर्शन, न्याय पढ़ाया और स्वयं विद्यालंकार के प्रधान आचार्य धम्मानन्द महाथेर से पालि, बौद्ध सहित्य, दर्शन आदि विषयों का गभीर अध्ययन किया।

श्रीलंका के अपने पहले प्रवास के दौरान राहुल जी ने बौद्ध शास्त्र का जो अध्ययन मनन किया था, वह दूसरे प्रवास के दौरान (1930-31) बुद्धचर्या और स्वलिखित नालन्दिका टीका के साथ सभाष्य अभिधर्मकोश के संपादन के रूप में प्रतिफलित हुआ। अभिधर्मकोश पर उनकी नालन्दिका टीका सरल व सुगम संस्कृत में लिखी गई थी और अपने ढंग का निराला ग्रन्थ है। इस विषय में इतना और जोड़ देना आवश्यक है कि सभाष्य अभिधर्मकोश के ह्वेन सांग कृत चीनी अनुवाद को अपने फ्रांसीसी अनुवाद और टीका के साथ लुई देला वेली पुसें ने पाँच खंडों में पेरिस से प्रकाशित कराया था (1923-26), उसकी पाद टिप्पणियों में उन्होंने संस्कृत पोथियों में से पाँच सौ से ऊपर कारिकायें संस्कृत में दी थीं। अभिधर्मकोश के अपने संस्करण में राहुल जी को पुसें के संस्करण से विशेष सहायता मिली थी। इसीलिये राहुल जी ने अपने संस्करण को बेलजियम के उसी महान् मनीषी लुई देला वेली पुसें के नाम समर्पित किया था। समर्पण अधोलिखित श्लोक के रूप में अंकित है-

प्रमथ्य चीन-भोट्-भाषामयं क्षीरमहार्णवम्।
येनोद्धृतं कोशरत्नं तस्मै श्रीपूषिणेऽर्पये॥

[चीन-भोट भाषा से निर्मित दुग्ध महासागर को मथकर जिसने (अभिधर्म) कोश रूपी रत्न को निकाला (उद्धार किया), उस (महामनीषी) श्री पुसें को यह ग्रंथ रत्न समर्पित करता हूँ।]

वर्ष 1933 के दौरान राहुल जी के जो कार्य हुए, वे पालि साहित्य और तिब्बती भाषा साहित्य से संबन्धित थे।

पालि के क्षेत्र में उन्होंने मज्झिम निकाय का हिन्दी अनुवाद किया और तिब्बती भाषा साहित्य के क्षेत्र में 'तिब्बत में बौद्ध धर्म', 'तिब्बती प्रांइमर', 'तिब्बती पदावलियाँ' और 'तिब्बती व्याकरण' लिखे।

वर्ष 1934 के दौरान राहुल जी का जो विशेष कार्य हुआ, वह था ह्वेन सांग द्वारा अनूदित वसुबन्धु के ग्रन्थ 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' के चीनी अनुवाद के प्रतिशब्दों (चीनी भिक्षु वाङ्मोल की सहायता से) को एकत्रित करना, उनमें से प्राय: आधे प्रतिशब्दों का संस्कृत में उद्धार करना और उन्हें बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित कराना।

तिब्बत की अपनी दूसरी यात्रा में राहुल जी ने ल्हासा (तत्कालीन तिब्बत की राजधानी) में बैठकर समूचे विनयपिटक का हिन्दी अनुवाद किया। रेडिङ्, साक्या आदि प्राचीन गोन्पाओं (मठ से मिलते-जुलते बौद्ध विहार) की यात्रा में वादन्याय, अभिधर्मकोश (मूल), सुभाषित रत्नकोश, न्यायबिन्दु-पञ्जिका टीका, हेतुबिन्दु अनुटीका, प्रातिमोक्ष सूत्र, मध्यान्तविभागभाष्य, वार्तिकालंकार (खंडित) आदि ग्रन्थ मिले, जो भारत में लुप्त हो चुके थे। राहुलजी ने उनकी प्रतिलिपियाँ और/या फोटोकापियाँ कर लीं और करा ली। यहाँ इतनां और जोड़ने की आवश्यकता है कि आचार्य धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक का तिब्बती से संस्कृत में पुनरुद्धार का काम राहुल जी ने अपनी पहली तिब्बत यात्रा के बाद प्रारंभ किया था और उसे किन्हीं कारणों से बीच में ही छोड़ दिया था, उसे अब पूरा करने की आवश्यकता न रही, क्योंकि उनकी दूसरी तिब्बत यात्रा से लौटते समय उस ग्रन्थरत्न की फोटोकापी उन्हें नेपाल में प्राप्त हो गई। उस यात्रा से लौटने के बाद राहुलजी ने 'वादन्याय' छपवाया ।

वर्ष 1936 में तिब्बत की तीसरी यात्रा में राहुल जी को साक्या गोन्पा में 'वार्तिकालंकार' और 'प्रमाणवर्तिक भाष्य' सम्पूर्ण मिले। उसी यात्रा में उन्हें प्रमाणवार्तिक की कर्णगोमिकृत सवृत्ति टीका और भाष्य और असंग का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'योगाचार भूमि' भी मिले। साथ ही प्रमाणवार्तिक के तीन परिच्छेदों पर प्रज्ञाकर गुप्त की टीका भी मिल गई। उसी प्रकार शलू गोन्पा में प्रमाणवार्तिक पर मनोरथनन्दीकृत वृत्ति प्राप्त हुई। आचार्य धर्मकीर्ति के हेतुबिन्दु और अर्चर की टीका और न्यायबिन्दु पञ्जिका (धर्मोत्तर कृत) पर दुर्वेक मिश्र की टीकाएँ उन्हें 1936 में ङोर गोन्पा में मिलीं। वहीं से उंन्हें स्फुटार्था श्रीघनाचार-संग्रह-टीका[5] की फोटोकापी भी मिली थी।

आचार्य धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सम्बन्ध परीक्षा' का भी संस्कृत में उद्धार राहुल जी ने ही किया। इस प्रकार उनके (आचार्य धर्मकीर्ति के) न्याय के सात ग्रन्थों में से 'सन्तानान्तर सिद्धि' और 'प्रमाण विनिश्चय' दो ही ऐसे ग्रन्थ हैं जो संस्कृत में अनुपलब्ध हैं – न तो मूल रूप में और न उद्धार किये गये रूप में। वे दोनों तिब्बती भाषा में उपलब्ध हैं।

मई 1938 में राहुल जी को अपनी चौथी व अन्तिम तिब्बत यात्रा में नैयायिक ज्ञानश्री के बारह ग्रन्थ मिले और 'योगाचार भूमि' के खंडित अध्याय भी मिले। नरथङ् गोन्पा में उन्होंने कई बड़े-बड़े भारतीय चित्रपटों और सिलेटी पत्थरों पर बने चौरासी सिद्धों की मूर्तियों के फोटो लिये।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन यात्राओं, प्रवासों आदि से भरा पड़ा है। इन्ही के दौरान जहाँ उन्होंने अनेक पांडुलिपियों, उनकी छायाकृतियों आदि की खोज की वहीं अपना लेखन कार्य भी करते रहे। अनुवादों, संशोधनों, संपादनों आदि के अलावा उन्होंने कई स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे। उनमें से बौद्ध विद्या से संबंधित मुख्य ग्रन्थ हैं – बौद्ध दर्शन (1944), बौद्ध संस्कृति (1953), पुरातत्त्व निबन्धावली (1935), सरहपादकृत दोहाकोश (1957), महामानव बुद्ध (1956) आदि। 'पालि साहित्य का इतिहास' उनकी अन्तिम रचना थी, जिसे लंका में रहते समय 1961 में लिखा था। इस प्रकार महापंडित राहुल सांकृत्यायन की बौद्ध धर्म-दर्शन से संबन्धित सभी रचनाओं की संख्या 24 तक पहुँच जाती है।[6] इनमें उन ग्रन्थों को नहीं गिनाया गया है, जो परोक्ष रूप में बौद्ध विद्या से जुड़े हुए हैं।

समालोचन

पालि साहित्य का इतिहास और संस्कृत काव्यधारा

जैसा पहले कहा जा चुका है, पालि साहित्य का इतिहास महापंडित राहुल सांकृत्यायन की बौद्ध-साहित्य-संबन्धी अन्तिम रचना है। इसकी रचना महापंडित ने 1961 में अपने अन्तिम श्रीलंका प्रवास के दौरान की थी। इसका प्रकाशन 1963 में हिन्दी समिति, लखनऊ ने किया था। इसी ग्रन्थ के आधार पर पालि भाषा और साहित्य विषय पर राहुल जी के मतों का उल्लेख और उनका समालोचन यहाँ सबसे पहले अभीष्ट है।

भारतीय आर्य भाषा परिवार के इतिहास को महापंडित ने पाँच कालों में विभाजित[7] माना है। इस विषय में उनकी राय सुनीति कुमार चटर्जी आदि भाषा विज्ञानिकों की राय से मिलती जुलती है। इस तथ्य को अधोलिखित चार्ट से व्यक्त किया जा सकता है -

(1) वैदिक काल

1200 ई०पू० से 1000 ई०पू० तक।

संहिताओं के काल के बाद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों (मुख्य और प्रामाणिक ही) आदि का काल आता है, जो वैदिक काल का विस्तार माना जा सकता है।

(2) पालि काल

600 ई०पू० से 1 ई०पू० तक।

इस युग में जो प्राकृत उद्‌भूत और विकसित हुये, उन्हें राहुल जी ने पालि भाषा के विविध स्वरूप माना है, अत: उन सबका एक सम्मिलित नाम पालियुग रखा। इस युग में पालि तिपिटक, अर्धमागधी में जैन आगम, अशोकी प्राकृत में अशोक के शिलालेख, गान्धारी प्राकृत में खंडित धम्मपद, संकर प्राकृत-संस्कृत[8] के प्राचीन ग्रन्थ (महावस्तु, ललित विस्तर आदि) आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(3) प्राकृत काल

1 ईसवी से 550 ईसवी तक।

इस युग में संस्कृत का विशाल काव्य, नाटक साहित्य तैयार हुआ। इस युग के प्रसिद्ध कवि और नाटककार थे अश्वकोष, भास, कालिदास, कुमारदास, शूद्रक, भारवि, विशाखदत्त आदि। इसी युग में शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी आदि प्राकृतों में प्रभूत साहित्य रचा गया।

(4) अपभ्रंश काल

550 ईसवी से 1200 ई० तक

इस युग में सुबन्धु, दंडी, भट्टि, विज्जा (610 ई०), बाण, हर्ष, भतृहरि, माघ, भवभूति, मह्नारायण, अनर्घराथव, क्षेमेन्द्र, बिल्हण, वाग्मह, श्रीहर्ष आदि की रचनायें आती हैं। चूँकि इस युग में संस्कृत के अलावा अपभ्रंश[9] में रची हुई रचनाओं का प्राधान्य रहा, इसीलिये राहुल जी ने इसका नाम अपभ्रंश काल रखा।

(5) आधुनिक काल

1200 ईसवी से आज तक।

इस काल के संस्कृत कवियों और लेखकों में पद्मावती, पंडितराज जगन्नाथ आदि का नाम लिया जाता है।

सुनीति कुमार चटर्जी आदि भाषा विज्ञानिकों ने काल-निर्धारण और नामकरण अधोलिखित प्रकार से अंकित किया है -

(1) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (Old Indo-Aryan Period)

2000 ई०पू० से 500 ई०पू०

(2) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल (Middle Indo-Aryan Period)

500 ई०पू० से 1000 ईसवी तक।

इसकाल को पुन: तीन उपकालों में विभाजित माना गया है। ये उपकाल अधोलिखित हैं –

(अ) प्राचीन मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा उपकाल (Old Middle Indo-Aryan Sub-period)

500 ई०पू० से 1 ई०पू० तक।

इसी उपयुग में पालि, अर्धमागधी, अशोकी प्राकृत, गान्धारी प्राकृत, संकर-प्राकृत-संस्कृत आदि का उद्‌भव और विकास माना जाता है।

(ब) मध्य मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा उपकाल (Middle Middle Indo-Aryan Sub-Period)

1 ईसवी से 500 ईसवी तक।

इस युग में शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी आदि प्राकृतों का उद्भव व विकास हुआ।

(स) उत्तर मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा उपकाल (Later Middle Indo-Aryan Sub-period)

500 ईसवी से 1000 ईसवी तक

बौद्ध धर्म और दर्शन पर लिखने वाले अधिकांश विद्वानों में बुद्ध के गृहत्याग (महाभिनिष्क्रमण; पालि, महाभिनिक्खमण) को लेकर अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। महापंडित ने तिपिटक से उद्धरण देकर सिद्ध कर दिया है कि सिद्धार्थ ने रात के अँधेरे में घर नहीं छोड़ा था, बल्कि दिन में रोते-विलपते माँ-बाप के सामने घर छोड़ा था। दीघनिकाय में स्पष्ट लिखा है – मातापितूनं रुदन्तानं केसमस्सुं ओहारेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि। गृहत्याग के पहले चार निमित्तों (दृश्यों – वृद्ध, रोगी, शव और संन्यासी) की बात भी सिद्धार्थ के जीवन में नहीं घटी थी। यह बाद के कवियों की कल्पना पर आधारित है।

इस युग में विविध अपभ्रंश (उद्विकास) भाषाओं व बोलियों का उद्भव व विकास हुआ।

(3) उत्तरकालीन भारतीय आर्यभाषा युग (Later Indo-Aryan Period)

1000 ईसवी से आज तक।

इस युग में आधुनिक क्षेत्रीय भाषाओं (हिन्दी, उर्दू, बंगला, पंजाबी, मराठी, गुजराती आदि का उद्भव व विकास हुआ और होता चला जा रहा है।

इन दोनों आचार्यों (राहुल सांकृत्यायन और सुनीति कुमार चटर्जी) के निष्कर्षों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर अधोलिखित तथ्य सामने आते हैं –

(क) दोनों आचार्यों का काल-निर्धारण मोटे रूप में ही है। इसका आधार पूर्णतः नियत या निश्चित तिथियाँ नहीं हैं।

(ख) सुनीति कुमार चटर्जी ने ऋग्वेद का काल 2000 ई०पू० से 1500 ई०पू० माना है, जबकि राहुल जी उसे 1200 ई०पू० मानते हैं। इसीलिये उन्होंने वैदिक काल को 1200 ई०पू० से 1000 ई०पू० माना है। चटर्जी महोदय समूचे वैदिक काल को (जिसमें संहितायें, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् सम्मिलित है) 2000 ई०पू० से 500 ई०पू० तक मानते हैं। इस काल का नाम उन्होंने प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (Old Indo-Aryan Period) दिया है।

(ग) राहुल जी पालिकाल का प्रारंभ 600 ई०पू० से मानते हैं, जबकि सुनीति कुमार जी 500 ई०पूं० से। उनका (सु० कु०च०) का मानना था कि आज उपलब्ध पालि तिपिटक बुद्धकालीन नहीं कहा जा सकता। वह संभवतः 500 ई०पू० से हुआ होगा।

(घ) राहुल जी के अनुसार प्राकृत काल 1 ईसवी से प्रारंभ होकर 550 ईसवी तक जाता है। वस्तुतः इस बात में कोई विशेष अन्तर नहीं, क्योंकि सौ पचास वर्षों के अन्तर को चटर्जी महोदय ने भी स्वीकार किया है।

(ङ) अपभ्रंश-काल को राहुल जी 550 ईसवी से 1200 ईसवी तक ले जाते हैं, जिसको सुनीति बाबू 500 ईसवी से 1000 ईसवी तक मानते हैं और उसका नाम उत्तर मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा उपयुग (Later Middle Indo-Aryan Sub-Period) देते है।

(च) इसी प्रकार आधुनिक काल की प्रारंभिक तिथि के निर्धारण के विषय में भी भेद को समझा जा सकता है। सुनीति बाबू ने इस काल का नाम उत्तर कालीन भारतीय आर्यभाषा काल (Later Indo-Aryan Period) दिया है।

पालि साहित्य का इतिहास ग्रन्थ में पालि साहित्य पर विवेचन का जो आधार महापंडित ने बनाया है; वह काल-गत नहीं, बल्कि क्षेत्र-गत है। उसे उन्होंने तीन खंडों में रखा है – (1) भारत में पालि, (2) सिंहल में पालि और (3) अन्यत्र पालि। 'अन्यत्र पालि' से

राहुल जी का तात्पर्य उन देशों में पालि साहित्य के विकास से है, जो बर्मा (जिसे आज म्यन्मार कहा जाता है), थाई देश, कम्बोज (कम्बोडिया) और लाव (लाओस) के नाम से जाने जाते हैं। किन्तु सुविधा की दृष्टि से इस खंड का चौथा अध्याय 'आधुनिक भारत में पालि' के नाम से रखा गया है।

संस्कृत काव्य धारा ग्रन्थ में राहुल जी ने एक बिन्दु की ओर भी स्पष्ट संकेत किया है, वह है आर्यो का उद्‌गम स्थल। इस बिन्दु पर आज विस्तृत चर्चा हो रही है। संघ परिवार (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उससे जुड़े संगठन) इस बात की जी-तोड़ कोशिश कर रहा है कि उनकी यह स्थापना कि भारत ही आर्यों का उद्‌गम स्थल था, सर्वमान्य हो जाय। इस विषय में राहुल जी पूर्णत: स्पष्ट थे और अपनी अनेक पुस्तकों और लेखों में स्पष्ट कहा है कि मध्य एशिया ही आर्यों का उद्‌गम स्थल था।

बौद्ध दर्शन

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बौद्ध दर्शन' का प्रथम संस्करण इलाहाबाद से 1944 में निकला था। प्रारंभ में यह उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दर्शन-दिग्दर्शन' का अंग था, किन्तु बाद में अलग भी प्रकाशित हुआ और प्राय: विद्वानों के बीच अलग ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है।

इस महान् ग्रन्थ में राहुल जी ने बौद्ध दर्शन के प्राय: सभी प्रस्थानों को लिया है और उन पर पूरा प्रकाश डाला है। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि बौद्ध दर्शन विषयक विचारों की जो स्पष्टता (Clarity of thought) इस ग्रन्थ में मिलती है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। तिस पर भी उन पर यह इल्जाम लगाया जाता है कि उन्होंने बौद्ध दर्शन की व्याख्या मार्क्सवादी नजरिये से की है। पर मैं समझता हूँ कि यह इल्जाम बेबुनियाद है। इस ग्रन्थ में राहुल जी यथासंभव वस्तुपरक हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि विद्वानों के बीच फैली अनेक निर्मूल धारणाओं को हटाने और सही दृष्टिकोण रखने में राहुल जी ने सराहनीय प्रयास किया है।

ग्रन्थ के प्रारंभ में ही राहुल जी ने सर राधाकृष्णन की उस निर्मूल धारणा की खबर ली है, जो उन्होंने भारत और भारत से बाहर खास तौर से पश्चिमी देशों में प्रचारित किया था। राधाकृष्णन गौतमबुद्ध के अनात्मवाद को उपनिषदों के आत्मवाद की परिणति बताते है, जो बात निराधार होने के साथ ही साथ हास्यास्पद भी है। इसीलिये राहुल जी ने उसे सर राधाकृष्णन की लीपापोती कहा है।[10] वस्तुत: राहुल जी ने बुद्ध के अनात्मवाद को ब्रह्मजाल सुत्त (दीघनिकाय का पहला सुत्त) में वर्णित बासठ मिथ्या दृष्टियों के परिप्रेक्ष्य में परखा है और बुद्ध के दृष्टिकोण को उस युग की दो परस्पर विरोधी दार्शनिक मान्यताओं से भिन्न दिखाया है। ये दार्शनिक मान्यतायें उस युग में शाश्वतवाद (पालि, सस्सतवाद) और उच्छेदवाद के नाम से प्रसिद्ध थीं। बुद्ध ने अपने को इन दोनों दृष्टियों से बचा कर रखा। आत्मा (जीव, पुद्‌गल सत्त्व आदि उसके पर्याय हैं) और लोक की नित्य सत्ता को नकार कर वे शाश्वतवादियों (उपनिषदिक, जैन, आजीवक आदि की दृष्टि) की जमात में जाने से बच गये और दूसरी तरफ चित्त की सन्तति और पुनर्भव (पुर्नजन्म से मिलता-जुलता सिद्धान्त) के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करके उन्होंने उच्छेदवादियों (लोकायतिक दृष्टि) से अपने को अलग-थलग रखा। बुद्ध इस विषय में स्पष्ट थे कि यदि वे लोक और आत्मा की सत्ता को लोकायतिकों की तरह नकार देते, तो श्रामण्य-लाभ (संन्यासी जीवन की उपलब्धियाँ) का उनका उपदेश निरर्थक साबित होता और इसके विपरीत यदि वे लोक और आत्मा की नित्य सत्ता को स्वीकार कर लेते, तो श्रामण्य से उत्पन्न कर्मादि का कोई लाभ नहीं मिलता; क्योंकि आत्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार 'आत्मा' तो किसी प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा ही नहीं रखता।

बौद्ध दर्शन में 'तिलक्खण' (संस्कृत, त्रिलक्षण) का सिद्धान्त प्रसिद्ध है, अर्थात् दु:खवाद, अनित्यवाद और अनात्मवाद। इसे बौद्ध धर्म-दर्शन की पहचान बताया जाता है। राहुल जी ने अपने अध्ययन के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि वस्तुत: ये लक्षण चार हैं - दु:खवाद, अनित्यवाद, अनात्मवाद और अनीश्वरवाद। तिपिटक के सुत्तों को उद्धृत करके राहुल जी ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि बुद्ध ने ईश्वरवाद का स्पष्ट शब्दों में खंडन किया था। अब प्रश्न उठता है कि पुराने

आचार्यों ने बौद्ध धर्मदर्शन के विश्लेषण में 'तिलक्खण' ही क्यों कहा 'चातु-लक्खण' (संस्कृत, चतुर्लक्षण) क्यों नहीं कहा। इसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने देखा कि नाम लेकर[11] ईश्वरवाद का खंडन करना आवश्यक नहीं था, क्योंकि आत्मवाद के खंडन के साथ ही वह स्वत: खंडित हो जाता है।

बौद्ध धर्म और दर्शन पर लिखने वाले अधिकांश विद्वानों में बुद्ध के गृहत्याग (महाभिनिष्क्रमण; पालि, महाभिनिक्खमण) को लेकर अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। महापंडित ने तिपिटक से उद्धरण देकर सिद्ध कर दिया है कि सिद्धार्थ ने रात के अँधेरे में घर नहीं छोड़ा था, बल्कि दिन में रोते-विलपते माँ-बाप के सामने घर छोड़ा था। दीघनिकाय में स्पष्ट लिखा है – मातापितूनं रुदन्तानं केसमस्सुं ओहारेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि।[12] गृहत्याग के पहले चार निमित्तों (दृश्यों – वृद्ध, रोगी, शव और संन्यासी) की बात भी सिद्धार्थ के जीवन में नहीं घटी थी। यह बाद के कवियों की कल्पना पर आधारित है।[13]

राहुल जी ने बौद्ध आचार्यों की देन को बार-बार सराहा है क्योंकि उनके (राहुल जी के) अनुसार बौद्ध आचार्यों ने भारतीय दर्शन और परंपरा को आसमान की बुलन्दी पर पहुँचा दिया था। वस्तुत: उन आचार्यों के अवदान का सही मूल्यांकन करने वाले विद्वानों में राहुल जी का नाम पहली कतार में आता है।

बुद्ध-चर्या

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का प्रसिद्ध ग्रन्थ बुद्ध-चर्या 1931 में सारनाथ (वाराणसी) से प्रकाशित हुआ। इसमें राहुल जी ने प्राय: सौ सुत्तों और विनयपिटक के कई अंशो का अनुवाद करके इस क्रम में रखने का प्रयास किया है कि बुद्ध के जीवन की घटनाओं को कालक्रम से वर्णित किया जा सके। इसमें तीन महीनों के वर्षावास को आधार बनाया गया है। बुद्ध ने कौन सा वर्षावास कहाँ बिताया, उसके साथ कौन कौन सी घटनायें जुड़ी हुई हैं आदि बातों को कुछ साक्ष्यों और कुछ अपनी कल्पना के आधार पर जोड़कर राहुल जी ने बुद्ध के पूरे जीवन वृत्त को दर्शाने का प्रयास किया है। वस्तुत: बौद्ध शास्त्र में यह पहला प्रयास था और अपने आप में अनूठा प्रयास था। यहाँ पर इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि पूरे तिपिटक के संकलन में घटनाओं के कालक्रम को आधार नहीं बनाया गया था। अत: बुद्ध शासन के पैंतालीस वर्षों का लेखा-जोखा आज तक अटकलबाजी का शिकार है। राहुल जी ने पहली बार इसे अटकलबाजी से उबारने का प्रयास किया।

बुद्धचर्या के विषय में लिखते समय इस विनम्र लेखक को एक बात बार-बार खटकती है। मुझे लगता है कि 'बुद्ध-चर्या' शीर्षक राहुल जी ने स्वयं नहीं दिया था। उनके किसी शिष्य या सहयोगी ने यह शीर्षक दिया होगा। यह भी संभव है कि प्रूफ-रीडिंग की स्थिति में 'बुद्ध-चर्या' पद अनदेखा रह गया हो। बौद्ध दर्शन और परंपरा की दृष्टि में शीर्षक होना चाहिये 'बोधि-चर्या'। बुद्ध-चर्या लिखना सिद्धान्तत: गलत है, क्योंकि 'चर्या' का प्रयोग बोधिसत्त्व के विषय में होता है, बुद्ध के विषय में नहीं। बुद्ध तो चर्याओं के क्षेत्र से ऊपर उठे हुये हैं। चर्याओं के आधार पर बोधिसत्त्व को बोधि-लाभ होता है और वे बुद्ध बन जाते है। बोधिलाभ के बाद चर्याओं की कोई अपेक्षा ही नहीं।

'बुद्धचर्या' ग्रन्थ के विषय में एक बात और उल्लेखनीय है। यह बात बुद्धचर्या के प्रस्तावना से उभड़ती है। प्रस्तावना में राहुल जी ने लिखा है कि भारत के अधिकांश मुसलमान बौद्ध धर्म से इस्लाम धर्म में गये। वे बौद्धों से मुसलमान बने। अपनी इस स्थापना की पुष्टि करते हुये राहुल जी ने लिखा है कि बौद्धों के तीर्थस्थलों और तत्कालीन बौद्ध-बहुल क्षेत्रों के आसपास आज भी[14] मुसलमान-बहुल गाँव और कस्बे हैं। ऐसा क्यों? उनके अनुसार नालन्दा राजगिर के पास बिहार शरीफ, जिला बहराइच में स्थित श्रावस्ती के आसपास के मुस्लिम-बहुल गाँव व कस्बे, सारनाथ के पास का विशेसरगंज मुहल्ला, कोसम्बी के पास का कोसम गाँव आदि इस बात के जीते जागते सबूत हैं। जहाँ तक क्षेत्रों

का सवाल है पाल राजवंश के मातहत रहने वाले मग, अंग, बंग और गौड बहुत बाद तक बौद्ध धर्मावलम्बी रहे। इसीलिये वहाँ पर आज भी मुस्लिम-बहुल आबादी है। यही बात सिन्ध, पंजाब, कश्मीर आदि के बारे में कही जा सकती है। अत: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंचालक के. सुदर्शन का यह कहना कि भारतीय मुसलमानों के पुरखे हिन्दू थे शतप्रतिशत निराधार और गलत है। भारतीय मुसलमानों के पुरखे विशुद्ध बौद्ध थे। फलत: मुसलमानों को हिन्दुत्व की मर्यादा में लाने और रखने का के. सुदर्शन का सुझाव निरर्थक और बेमानी है।

महामानव बुद्ध

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने बुद्ध की जीवनी के रूप में 'महामानव बुद्ध' नामक ग्रन्थ 1956 में प्रकाशित किया था। इस महान् ग्रन्थ में राहुल जी ने स्पष्ट लिखा है कि बुद्ध पहले चिन्तक थे जिन्होंने अपने सिद्धान्तों को 'प्रतीत्यसमुत्पाद' सिद्धान्त के प्रकाश में प्रस्तुत किया था। ऐसा विश्व दर्शन के इतिहास में पहली बार हुआ और यह गौतमबुद्ध के विचारों के कारण हुआ।

राहुल जी बुद्ध के युक्तिपूर्ण, सरल और चुभने वाले उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित थे। ऐसा लगता है कि तिपिटक में ऐसे स्थलों को पढ़कर राहुल जी बुद्ध के प्रति नतमस्तक हो गये थे और यह मानने के लिये विवश थे कि ईसा के जन्म से भी पाँच छ: सौ वर्ष पहले पैदा हुआ एक व्यक्ति सत्य के प्रति इतना निष्ठावान् और दृढविश्वासी हो सकता है और मनुष्य की स्वतन्त्र बुद्धि की महत्ता का इतना बड़ा हामी। ऐसा ही एक स्थल है जहाँ बुद्ध को केसपुत्तीय कालामों को सम्बोधित करते हुये दिखाया गया है। बुद्ध के मार्मिक शब्द थे –''मत तुम अनुश्रव (श्रुत) से, मत परंपरा से, मत 'ऐसा ही है' से, मत पिटक-संप्रदान (अपने मान्य शासन की अनुकूलता) से, मत तर्क के कारण से, मत जय (न्याय)-हेतु से, मत वक्ता के आकार के विचार से, मत अपने चिर-विचारित मत के अनुकूल होने से, मत वक्ता के भव्य-रूप होने से, मत 'श्रमण हमारा गुरु (बड़ा) है' से विश्वास करो। जब कालामों, तुम अपने ही जानो – यह धर्म प्रनुकूल है, यह धर्म सदोष है, यह धर्म विज्ञ-निन्दित है, यह लेने ग्रहण करने पर अहित (दु:ख) के लिये होता है, तब कालामों, तुम (उसे) छोड़ देना।''

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ

(1) *'उद्योग' शब्द से संस्कृत नियमों के अनुसार 'औद्योगिक' शब्द निष्पन्न है। इन पंक्तियों के लेखक का मानना है हिन्दी को सरल व सुगम बनाने के लिये हिन्दी के अपने सरल नियम बनाने पड़ेंगे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन को हिन्दी के सरल रूप रुचिकर थे। हिन्दी भाषा के विकास में एक ऐसा दौर आया था, जब हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और भाषाविद् सरलता व सुगमता के पक्षधर थे। आज उसकी और भी आवश्यकता है।*

(2) *राजा राममोहन राय धर्म, दर्शन आदि के प्रकांड विद्वान् थे। उन्होंने प्राचीन हिन्दू शास्त्रों से उद्धरण दे देकर यह सिद्ध कर दिया था कि सती-प्रथा धर्म-विरुद्ध है।*

(3) *पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के प्रिंसिपल थे और संस्कृत के महान् पंडित। उन्होंने शास्त्रों के आधार पर सिद्ध कर दिया था कि विधवा-विवाह शास्त्र सम्मत है।*

(4) *प्रारंभिक संस्कृत पाठमाला की चार श्रृंखलायें लेखक ने 1960 के बाद के वर्षों में पढ़ा था।*

(5) *जिसका संपादन और संशोधन डॉ. संघसेन (प्रस्तुत लेख का लेखक) ने किया और जिसका प्रकाशन काशी प्रसाद जायसवाल संस्थान, पटना ने 1968 में किया।*

(6) *बौद्ध विद्या पर महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखे गये/मूल में उद्धार किये गये/मूल से अनूदित किये गये/ संशोधित किये गये/संपादित किये गये ग्रन्थों की सूची–*

1. *वसुबन्धुकृत अभिधर्मकोश (राहुल सांकृत्यायन कृत नालन्दिका टीका के साथ), वाराणसी, 1931;*
2. *बुद्धचर्या, वाराणसी, 1931 (द्वितीय संस्करण, 1952);*
3. *धम्मपद (मूल पालि, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद के साथ) सारनाथ 1933 (द्वितीय संस्करण, लखनऊ, 1957);*
4. *विनयपिटक (हिन्दी अनुवाद), (1) भिक्खु पातिमोक्ख, (2) भिक्खुनी-पातिमोक्ख, (3) महावग्ग, (4) चुल्लवग्ग), सारनाथ, 1935;*
5. *धर्मकीर्ति कृत प्रमाणवार्तिक, संपादित – जर्नल आफ़ दि*

बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी, वालूम XXIV, 1938 खंड I और II ;

6. मातृचेट कृत अध्यर्धशतक, संपादित – (काशी प्रसाद जायसवाल के साथ) जर्नल आफ दि बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी, वाल्यूम, XXIII, खंड IV, 1937;

7. नागार्जुनकृत विग्रहव्यावर्तनी संपादित (काशी प्रसाद जायसवाल के साथ) जर्नल आफ दि बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी वाल्यूम XXIII;

8. धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक (मनोरथनन्दीकृत वृत्ति के साथ, संपादित, पटना, 1930;

9. धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक (स्वार्थानुमान परिच्छेद) स्वोपज्ञवृत्ति सहित और कर्णगोमिकृत वृत्ति सहित, संपूरित और संपादित, इलाहाबाद, 1944;

10. प्रज्ञाकर गुप्तकृत प्रमाणवार्तिकभाष्य, संपादित, पटना, 1953;

11. तिब्बत में बौद्ध धर्म, इलाहाबाद, 1948;

12. बौद्ध दर्शन, इलाहाबाद, 1944 (द्वितीय मुद्रण, 1948);

13. बौद्ध संस्कृति, कलकत्ता, 1953;

14. दीर्घागमस्य सूत्रद्वयम् (महावदान-महापरिनिर्वाण-सूत्रे) भिक्षु-बुद्धयशसश्चीन भाषान्तरत: वाड्मोल पण्डित साहाय्येन श्री राहुल-सांकृत्यायनेन पुन: संस्कृतेऽनूदितम्, लखनऊ 1957;

15. पुरातत्त्व-निबन्धावली, इलाहाबाद, 1935;

16. सर्च फार संस्कृत मनुस्क्रिप्ट इन तिब्बत, वालूम XXI खंड I, पे०पे० 8-10, वालूम XXIII, खंड-1 पे०पे० 33-52 और वालूम XXIV खंड IV, पे०पे० 1-27, जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी;

17. दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद), सारनाथ;

18. मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), सारनाथ;

19. वसुबन्धुकृत विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि (चीनी पाठ से संस्कृत में उद्धार) जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी;

20. धर्मकीर्तिकृत: वादन्याय: सटीक:, संपादित, जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी,

21. खुद्दकपाठ (मूल पालि), संपादित,

22. सरहपादकृत दोहाकोश (हिन्दी छाया के साथ), पटना, 1957;

23. महामानवबुद्ध, लखनऊ, 1956;

24. पालिसाहित्य का इतिहास, (लिखित 1961), लखनऊ 1963 (द्वितीय संस्करण फरवरी, 1973)।

(7) राहुल सांकृत्यायन, संस्कृत काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद, 1958. पे.पे. 2-3, आदि।

(8) इस प्राकृत के विविध नाम हैं। विद्वानों ने समय-समय पर इसे विविध नामों (गाथा संस्कृत, बौद्ध संस्कृत, उत्तरी और बौद्ध संस्कृत, मिश्रि संस्कृत बौद्ध संकर संस्कृत आदि) से अभिहित किया है। विनम्र लेखक का मत है कि इसे संकर प्राकृत-संस्कृत कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

(9) किसी भी भाषा या बोली में काल-गत और क्षेत्र-गत परिवर्तन को प्राचीन आचार्य भाषा-विकार मानते थे। वे भाषाओं और बोलियों को संस्कृत के पैमाने से नापते थे। यही कारण है कि प्राकृत-युग के बाद के युग को उन्होंने अपभ्रंश-युग कहा। महापंडित ने इस विषय पर ज्यादा विचार नहीं किया और वे वही नाम प्रयुक्त करते रहे। विनम्र लेखक ने इस विषय पर विचार किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भाषाओं का विकास होता है न कि उनका भ्रंश या गिरावट। अत: उन्हें अपभ्रंश कहना भाषा विज्ञान के नियमों का उल्लंघन है। इसीलिये लेखक ने एक नया नाम सुझाया है और वह है – उद्‌विकास। आशा है विद्वत्-जगत् इसे स्वीकार करेगा।

(10) यह बात राहुल जी ने उस समय लिखी थी, जब भारत के बुद्धिजीवी वर्ग पर राधाकृष्णन का जादू चढ़ा हुआ था। राधाकृष्णन की आलोचना करने से लोग घबराते भी थे और कतराते भी थे।

(11) महापंडित राहुल सांकृत्यायन को ईश्वरवाद का स्पष्ट उल्लेख इसलिये करना पड़ा कि जिस युग में राहुल जी जिये उस युग में ईश्वरवाद एक ज्वलन्त प्रश्न था और आज भी है।

(12) दीघनिकाय

(13) चार निमित्तों की बात को भीमराव आम्बेडकर ने भी खारिज कर दी है। उनके अनुसार यह तर्कसंगत नहीं कि उन्तीस साल के एक जवान व्यक्ति को, भले ही वह राजकुमार रहा हो, वृद्ध, रोगी, शव और संन्यासी का दर्शन पहले न हुआ हो।

(14) 'आज भी' का तात्पर्य यह है कि 1947 में देश के बँटवारे के बाद भी क्योंकि उस घटना के बाद देश के अनेक स्थानों से मुसलमानों का पलायन हुआ था। अत: कहीं-कहीं आबादी का अनुपात बदल चुका है। ■

डॉ. संघ सेन सिंह
पूर्व अध्यक्ष व आचार्य, बौद्ध विद्या विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी के जाने-माने कथाकार, आलोचक प्रो. मधुरेशजी राहुल साहित्य के गहन अध्ययेता रहे हैं। इन्होंने राहुलजी से संबंधित अनेकों लेख तथा विभिन्न पुस्तकें लिखी हैं। राहुलजी के कथा-साहित्य पर मधुरेशजी ने विगत 9 अप्रैल, 2001 को 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन स्मारक व्याख्यान' दिया था। यह कार्यक्रम राहुलजी के जन्मदिवस दिनाँक 9 अप्रैल को दिल्ली में आयोजित किया गया था। यह व्याख्यान बिना किसी काट-छाँट के प्रस्तुत है।

राहुल का कथा-कर्म और इतिहास-बोध

■ प्रो. मधुरेश

राहुल सपने देखने वाले व्यक्ति थे और मानते थे कि उन सपनों को ही यथार्थ की धरती पर फैलाकर एक जीने लायक समाज बनाया जा सकता है। अपने कथा-कर्म की विधिवत् और व्यवस्थित शुरूआत से काफी पहले, सन्' 24 में ही अपने यूटोपिया 'बाईसवीं सदी' लिखकर वे अपने सपनों के भारत का आभास दे चुके थे। उस सपने में सद्य: निर्मित सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका थी। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वे अतीत के उन क्षेत्रों, काल-खण्डों एवं चरितनायकों का उत्खनन करते हैं जो उनके सपनों के इस भारत को यथार्थ में बदल सकें। अपने इन उपन्यासों में वे एक तरह से बृहत्तर भारत के सांस्कृतिक संबंधों की खोज का एक साहसिक अभियान शुरू करते हैं। राहुल घुमक्कड़ी से शास्त्र की ओर आए थे। उनके अपने जीवन में यायावरी ही सारे ज्ञान का उत्स रही थी और घूम-फिर कर ही उन्होंने अनेक देशों, समाजों और सांस्कृतिक केंद्रों को देखा था। उनके अपने आदर्श-राज्य में इस बिखरे पड़े अतीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। वे वस्तुत: भविष्य और अतीत को जोड़कर वर्तमान की रचना के लिए प्रतिश्रुत लेखक का उदाहरण हैं।

अपने एक मात्र सामाजिक उपन्यास 'जीने के लिए' ('39) में राहुल उपन्यास में यथार्थवाद की भूमिका का संकेत दे चुके थे। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भी वे यथार्थवाद की भूमिका पर विशेष बल देते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास में यथार्थवाद से उनका तात्पर्य है कि कोई लेखक जिस देशकाल को अपनी रचना के लिए चुनता है और अपने पात्रों को जिस पृष्ठभूमि में अंकित करता है, उसकी सम्पूर्ण और वास्तविक जानकारी उसे होनी चाहिए। इस जानकारी के अभाव में रचना न तो प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बन पाएगी और न ही जीवन्त। ऐतिहासिक उपन्यासकार की व्यावहारिक कठिनाइयों पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, 'ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना होता है, जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है, किन्तु उसने पदचिह्न कुछ जरूर छोड़े हैं जो उसके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते। इन पद-चिह्नों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिए दुष्कर समझते हैं, तो कौन कहता है, आप जरूर ही इस पथ पर कदम रखें?'... (ऐतिहासिक उपन्यास, 'आलोचना,' पूर्णांक 13 अक्टूबर' 54 पृ. 170) इतिहास और प्रागैतिहास के बीच सीमा रेखा खींचते हुए वे इस तथ्य पर बल देते हैं कि जिस समय की कुछ समकालीन लिखित सामग्री उपलब्ध हैं, उसे कथा साहित्य के लिए ऐतिहासिक माना जा सकता है। हमारे यहाँ, स्पष्ट है ऐसा काल तीन-चार हजार वर्ष तक का ही हो सकता है। इसी क्रम में, एक ऐतिहासिक उपन्यासकार द्वारा अपने लिए चुने गए कालखण्ड के प्रति उसके सलूक पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, 'हरेक कथाकार के लिए आवश्यक नहीं है कि वह सारे काल की प्राप्य सामग्री का आह्वान करे, यह संभव भी

नहीं है। ऐतिहासिक सामग्री का हल्के दिल से अध्ययन करना लाभदायक नहीं है, इससे लेखक आधा तीतर आधा बटेर पैदा करने में समर्थ होगा, जो और भी उपहासास्पद् बात होगी...। जो भी ऐतिहासिक चरित आपको आकर्षक मालूम हो उसे ले लिजिए। फिर उसके देश और काल के बारे में जितनी ज्ञातव्य बातें हैं, उन्हें जमा करने में लग जाइए...' (वही पृ. 171)। इस प्रक्रिया में वे एक ऐतिहासिक उपन्यासकार में भी वैसे ही चयन-विवेक को आवश्यक मानते हैं जैसा कि एक इतिहासकार में होता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को भी यह मालूम होना चाहिए कि उस सामग्री में से किसका मूल्य अधिक है और किसका कम। यहाँ भी उसकी अपनी प्रस्तावित रचना के मूलस्रोत के रूप में लिखित और प्रामाणिक सामग्री का ही महत्व अधिक है। इसलिए वे इस सामग्री में सिक्कों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों की विशेष भूमिका स्वीकार करते हैं। इनके साथ ही तत्कालीन वास्तुशिल्पें, मूर्तियाँ और चित्रादि संबद्ध काल-खण्ड के समाज को बहुत प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। अत: कोई भी लेखक जो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उपन्यास लिखने में प्रवृत्त होता है, इस सामग्री की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसके विपरीत इस सारी सामग्री को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करके वह अपनी रचना को अधिक प्रामणिक और यथार्थवादी बना सकता है। राहुल सांकृत्यायन मानते हैं कि अजंता की चित्रशालाएँ पाँचवी से सातवीं सदी के भारत, भारतीय समाज का बहुत सच्चा और प्रामाणिक चित्र उपस्थित करती हैं। सांची और भरहुत की मूर्त्तियों को अच्छी तरह अध्ययन किए बिना मौर्य और शुङ्ग काल पर अच्छे उपन्यास नहीं लिखे जा सकते। उसके लिए ऐतिहासिक संग्रहालयों को अच्छी तरह देखा जाना आवश्यक है। काल-क्रम में वेश-भूषा और खान-पान आदि में घटित परिवर्तनों की सूक्ष्मता से देखना और अंकित करना आवश्यक है।

ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से, जिसे राहुल 'यथार्थवाद' की संज्ञा देते हैं, ऐतिहासिक सामग्री की भाँति ही भौगोलिक अध्ययन का भी विशेष महत्व है। इस संदर्भ में उनकी टिप्पणी है, 'जिस तरह ऐतिहासिक मानदण्ड स्थापित करने के लिए तत्कालीन राजाओं के राज्य के शासनकाल की पहले ही से तालिका बनाकर उसमें वर्णनीय घटनाओं के अध्ययन-क्रम को टाँक लेना जरूरी है, उसी तरह भौगोलिक स्थानों, उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक-ठाक अंदाज रहने के लिए तत्संबंधी नक्शे का खाका हर वक्त तैयार रहना चाहिए। नक्शा तो बल्कि हमारे मानस-पटल पर अंकित हो जाना चाहिए...' (वही पृ. 172)। इस सबके साथ ही, एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए, तर्क और विचार पर आधारित वैज्ञानिक दृष्टि का होना भी बहुत जरूरी है। किसी भी समाज में कथा-पुराणों में अनेक ऐसी वस्तुओं के समावेश संभव है जिन्हें वैज्ञानिक आधार पर प्रमाण-सम्मत नहीं माना जा सकता। रामायण और महाभारत के संदर्भ में आज भी अनेक लोग पुष्पक विमान और अणुबम जैसी चीजों को सत्य समझते हैं। बल्कि हाल के वर्षों में ऐसे लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है। लेकिन, ओझाओ, सयानों और कथा-पुराणों की इन 'सच्चाइयों' के सहारे ऐतिहासिक उपन्यासकार की यात्रा सम्पन्न नहीं हो सकती। इन मान्यताओं और भ्रमों को भरसक तोड़कर ही वह अपनी स्चनात्मक भूमिका का निर्वाह कर सकता है। यही वह इतिहास दृष्टि है जिसके आधार पर 'दिव्या' के संदर्भ में, यशपाल इतिहास को विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु घोषित करते हैं।

राहुल सांकृत्यायन ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए लंबी और गंभीर तैयारी की है। अपने लिए उन्होंने उन कालखण्डों के कुछ विशिष्ट और अज्ञातप्राय चरित नायकों को चुना है जिनकी अभिरुचियाँ, संस्कार और संलग्नताएँ स्वयं राहुल से मेल खाती है। यायावरी, बौद्ध भिक्षु के रूप में अपने निजी अनुभवों का उपयोग और धर्म के नाम पर पलने वाले आडम्बरों और कर्म-काण्ड का विरोध उनके इन चरित नायकों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अपने प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'सिंह सेनापति' (1944) से ही उन्होंने गणतंत्र बनाम राजतंत्र की लंबी धारावाहिक बहस शुरू की जो उनकी रचनाओं में क्रमशः विस्तार पाती है। यात्राएँ सिंह के लिए अनुभव-समृद्धि का साधन ही नहीं है, वे जीवन का

दृष्टिकोण और मूलाधार बदलने में भी विशिष्ट भूमिका निबाहती हैं। सिंह अठारह वर्ष की अवस्था में वैशाली से तक्षशिला जाता है, आचार्य बहुलाख से शिक्षा ग्रहण करता है और प्राय: दस वर्ष बाद उन्हीं की पुत्री रोहिणी से विवाह करके तक्षशिला से लौटता है- वैशाली जाकर अपने नए जीवनानुभवों से अपनी मातृभूमि को समृद्ध करने। वैशाली से तक्षशिला तक की उसकी साधनहीन यात्रा पोतों और सार्थवाह के साथ छोटे-मोटे श्रम और आजीविका के सहारे सम्पन्न हुई है। 'विस्मृत यात्री' (1954) का नरेन्द्र यश भी अठारह वर्ष की अवस्था में ही श्रामणेर बनकर यायावरी करता है। उसकी बहुविज्ञता, बहुश्रुतता और निर्बाध यायावरी राहुल को विशेष रूप से आकृष्ट करती है। वे अपने अनुभव से जानते थे कि यात्राओं में अधैर्य घातक है। शांत, स्थिर और निर्द्वन्द्व मनोभाव अच्छी और सार्थक यात्रा की पहली शर्त है। यही कारण है कि नरेन्द्र यश अपनी यात्राओं में उपासकों-गृहस्थों की अपेक्षा शिशुओं को पसंद करता है...। ''उपासकों (गृहस्थों) के घर-द्वार होते हैं, पुत्र-पौत्र होते हैं। उन्हें सब बातों में जल्दी पड़ी रहती है। झटपट अपनी तीर्थ यात्रा समाप्त करके घर लौटना चाहते हैं हम भिक्षु निर्द्वन्द्व होते हैं, हमें किसी चीज की परवाह नहीं होती। जहाँ चाहा दो-चार दिन नहीं, दो चार महीने रुक गए, बस्ती और नगरी में ही नहीं, पशुपालों के डेरों में महावतों में भी...।'' (विस्मृत यात्री, पृ.68) 'जय यौधेय' (1944) का जय आचार्य वसुबन्धु की शिक्षा के प्रभाव में सिंहल-यात्रा का संकल्प लेता है क्यों आचार्य के अनुसार तथागत के उपदेश अपने शुद्धतम रूप में वहीं उपलब्ध हैं। बहुत विलंब से उसे इस यात्रा का अवसर मिल पाता है लेकिन उसकी साधनहीन यात्रा, जो दीनारों और अज्जुका के राजप्रभाव से मुक्त हैं, राहुल की अपनी अनेक यात्राओं का स्मरण कराती है। सिंहल में एक बैद्ध भिक्षु के रूप में उसकी विधिवत् दीक्षा राहुल का अपना ही जीवनानुभव है जो बौद्ध धर्म और तथागत के प्रति उनके समादर का संकेत है। आचार्य असंग द्वारा तथागत और उनके धर्म के पक्ष में कही गई अनेक बातें जय को आकृष्ट करती हैं क्योंकि अपनी अनिश्वरवादी और संघ-समर्पित प्रवृत्ति में वे मार्क्सवाद के पर्याप्त निकट पड़ती हैं। यायावरी का एक अदृश्य आकर्षण जैसे इन सारे नायकों के रक्त में हिलारें लेता है। और किसी एक स्थान पर उन्हें जमकर बैठने नहीं देता। अठारह वर्ष की अनथक यात्रा के बाद जय अपनी मातृभूमि अग्रोद लौटता है। ''आज एक युग के बाद मैं अग्रोद को लौटा। अब मैं अपरिपक्व बुद्धि किशोर नहीं, बल्कि तीस वर्ष का एक प्रौढ़ तरूण था''...(वही, पृ 256) क्या जय के इस अनुभव में राहुल का स्वयं अपना वह अनुभव नहीं कौंधता है जब और भी लंबी कालावधि, पूरे चौंतीस वर्ष बाद वे स्वयं सत् पउ में पचास की आयु पूरी कर लेने के बाद ही, अपनी जन्मभूमि पंदहा को लौटे थे?

अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' के अंतिम खण्ड में राहुल सद्य: स्वाधीन भारत के नेताओं की भाषा-संस्कृति संबंधी नीतियों को लेकर घोर असंतोष व्यक्त करते हैं। उनकी इस दौर की दिल्ली-यात्रा प्राय: ही खीझ और पीड़ा से भरी होती थी। पंडित नेहरू और मौलाना आजाद के हिंदी-विरोधी दृष्टिकोण का मौका मिलने पर, उन्होंने हमेशा तीव्र भर्त्सना की है। वे यह मानते थे कि देश के स्वाधीन हो जाने पर भी दासता के संस्कार को धो पोंछकर एक दिन में नहीं बहाया जा सकता। अपने इन निजी जीवन प्रसंगों का लाभ, अपने चरित नायकों के बहाने, इतिहास में वर्तमान की यात्रा करके लेते हैं। जब जय सिंहल जाने के क्रम में कलिंग पहुँचता है तो यह देखकर उसे आश्चर्य होता है कि सम्राट अशोक के कलिंग-विजय को कई शताब्दियाँ बीत जाने पर भी मगध का सांस्कृतिक आधिपत्य आज भी बना हुआ है और कलिंग की स्थिति मगध के सांस्कृतिक उपनिवेश की है। मागधी भाषा और वेश-भूषा आज भी कलिंग में सम्मान की बात समझी जाती है। मगध के कारूँ और पाषाण शिल्पियों की कलिंग में बहुत माँग है। शृंगार और प्रसाधन की चीजों में भी मगध अनुकरणीय समझा जाता है। कविता और कला के क्षेत्र में तो मगध का प्रभाव और भी प्रबल है। क्या जय के इस अनुभव में अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति उपेक्षा में राहुल की अपनी पीड़ा ही डंक नहीं मार रही है?

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास-दृष्टि को इन तथ्यों के प्रकाश में ही ठीक से समझा जा सकता है। इतिहास का अर्थ उनके लिए सिर्फ बाह्य तथ्यों और आँकड़ों तक सीमित नहीं है। यद्यपि इनके महत्व को भी वे कम करके नहीं देखते। अपने विशाल अध्ययन और अनथक यायावरी के बीच उन्होंने इतिहास में कुछ सुरक्षित लेकिन उपेक्षित प्राय चरित्-द्वीपों की खोज की थी। अपने स्वभाव के अनुरूप उन्होंने वर्षों उन पर लिखने के लिए सामग्री जुटाई और गंभीर तैयारी की। इतिहास का कोई समतल कालखण्ड उन्होंने अपने लिए नहीं चुना-जैसे प्राचीन भारत का स्वर्णिम अतीत जयशंकर प्रसाद ने या मध्यकालीन भारत वृन्दावन लाल वर्मा ने चुना था। इसकी शुरुआत वस्तुतः उन्होंने सन् 42 में 'वोल्गा से गंगा' से ही की थी और जब उन्हें लगा कि ऐसा बहुत कुछ है जिसे चाहकर भी इसमें समेटा नहीं जा सकता तो वे ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर मुड़ गए। उनके जैसा अधैर्यवान और प्रायः हमेशा त्वरा की स्थिति में रहने वाला लेखक भी ऐतिहासिक उपन्यासों को लिखने में आश्चर्यजनक धैर्य का परिचय देता है। 'मधुर स्वप्न' के लिए सामग्री के चयन का कार्य उन्होंने सोवियत संघ की अपनी यात्रा में, व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण बाध्य होकर अपने ईरान-प्रवास में सात महीने रहकर सन् '44-'45 में किया था। उपन्यास का लेखन इसके कई वर्ष बाद सन् 49 में शुरू होकर अगले वर्ष सन् 50 में उसका प्रकाशन हुआ। अपने इन उपन्यासों में, जैसाकि पहले कहा जा चुका है, वे अतीत में उन मानवीय द्वीपों की खोज करते हैं जो निरंकुश राजतंत्र और सामंतवाद के विरुद्ध मानव की स्वाधीनता, समता और भ्रातृत्व को बचाए रखने के प्रयासों में लगे थे। काल की दृष्टि से उनका यह चुनाव ऋग्वैदिक आर्यों से प्रारंभ होकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तक आता है। लिच्छवि, गांधार, यौधेय आदि गण वस्तुतः भारतीय इतिहास के ऐसे ही द्वीप हैं। ये राजतंत्रों की निरंकुशता के विरुद्ध संघर्ष को जीवन का सत्य मानकर चलते हैं। देश में ही नहीं, देश के बाहर भी उनके सपनों को साकार करने वाला कोई चरितनायक मिला तो उन्होंने अपने बनाए परिवार में उसे शामिल किया। 'मधुरस्वप्न' का मज्दक इसीलिए ईरान का होकर भी जय और सिंह की बिरादरी का ही चरितनायक है। अपनी प्रकृत त्वरा से ऊपर उठकर राहुल धैर्यपूर्वक इन उपन्यासों की रचना में प्रवृत्त होते हैं। इतिहास, संस्कृति, स्थापत्य, मूर्तिकला, यात्राओं और संग्रहालयों का योग इसके पीछे सरलता से देखा जा सकता है।

अपने पहले ऐतिहासिक उपन्यास 'सिंह सेनापति' (1944) के लिखे-जाने के कारणों का उल्लेख करते हुए राहुल ने लिखा है कि इसके पूर्व 'वोल्गा से गंगा' में उन्होंने बौद्धकाल पर भी एक कहानी लिखी थी- लेकिन उसमें अनेक बातें नहीं लिखी जा सकीं। अतः इस उपन्यास का विचार मन में आया। उपन्यास की अपनी संक्षिप्त भूमिका में उन्होंने यह संकेत भी दिया है कि इसका विषय मुख्यतः वैशाली का गणतंत्र है और तत्कालीन बौद्ध-जैन, संस्कृत, पालि और तिब्बतीय भाषाओं के साहित्य में उसके संबंध में जो सामग्री उपलब्ध हैं, उसका उपयोग इस उपन्यास के लेखन में हुआ है।

गणतंत्र बनाम राजतंत्र की लंबी बहस राहुल का प्रिय विषय है। प्राचीन भारतीय गणतंत्रों में वे आदिम साम्यवाद का स्वरूप देखते हैं और निरंकुश, विलासी राजतंत्र के विरुद्ध इस गण व्यवस्था को वे एक आदर्श व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जब सिंह अपनी लंबी यात्रा के बाद वैशाली से तक्षशिला पहुँचता है तो आचार्य बहुलाख उसका अभिनंदन करते हुए कहते हैं, '...वैशाली रजुल्लों के समुद्र में एक गणद्वीप हैं...' वैशाली और तक्षशिला में सिंह को अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं। जीवन का उल्लास और उमंग उनके सामाजिक जीवन की मुख्य पहचान है। स्वाभिमान और गण की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देना उनके लिए साधारण बात है। दोनों ही गणतंत्रों के सामान्य शत्रु उनके पड़ोसी राजतंत्र हैं, जिन्हें गणों का स्वाधीन और आत्म सम्मानपूर्ण जीवन फूटी आँख नहीं सुहाता है। यदि पश्चिम में तक्षशिला का शत्रु पार्श्व है तो पूर्व में वैशाली का मगध जिसका प्रतिनिधि सम्राट बिंबसार है।

जैसा कि कहा गया राहुल सांकृत्यायन गण-व्यवस्था का चित्रण एक आदिम साम्यवादी समाज के रूप में

करते हैं और दोनों व्यवस्थाओं के तुलनात्मक चित्रण द्वारा अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। जब सिंह अपनी शिक्षा पूरी करके, रोहिणी के साथ वैशाली लौट रहा होता है तो मद्र और मल्ल को पार करते ही जहाँ गण-व्यवस्था है, जैसे-जैसे वह पूर्व की ओर बढ़ता है, उसे दोनों व्यवस्थाओं का अंतर स्पष्ट होने लगता है। इस अंतर पर सिंह की टिप्पणी है, 'यह राजा का राज्य है, इसलिए मनुष्य के व्यवहार में कृत्रिमता ज्यादा है, छोटे-बड़े का ख्याल अधिक है। लोग गणों की अपेक्षा ज्यादा गरीब है और बहुत से दास भी देखे जाते है'... (सिंह सेनापति, पृ 91) गण की अपेक्षा राजा अधिक निरंकुश और स्वेच्छाचारी हैं। लोभवश वे बड़े-बड़े खतरे उठाते है और अपने लिए भोग का असीमित अधिकार सुरक्षित रखते है। सम्पत्ति, स्त्रियाँ और पृथ्वी उनके मुख्य आकर्षण है। वैशाली की इस यात्रा में ही सिंह का मित्र माद्रिक पश्चिम गांधार में शासानुशास द्वारा इस निरकुंश राजतंत्र की एक झलक सिंह को देता है जिसे सुनकर किसी गण व्यवस्था के लिए ऐसी निरकुंशता सिंह को असह्य लगती है। इस पर माद्रिक उससे विस्तारपूर्वक राजतंत्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसके मुख्य घटकों के रूप में विस्तारवाद और वर्ण व्यवस्था की चर्चा करता है?

इसी यात्रा में कान्यकुब्ज की राजकुमारी विद्या से रोहिणी और सिंह की भेंट दो मित्र प्रकृति वाले समाजों में स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट करती है। विद्या को रोहिणी के गट्टे पड़े कड़े हाथों को देखकर आश्चर्य होता है। वह आभूषणें से लदी है, जबकि रोहिणी के हाथों में कंकण तक नहीं है। उसकी जिज्ञासा का संक्षेप में उत्तर देते हुए रोहिणी कहती है, 'भूषण हमारे काम में बाधक हो सकता है...' (वही, पृ, 97) कपिल, इसी संदर्भ में, पार्श्व और बाबेरू के अपने अनुभव बताता हुआ कहता है कि वहाँ भी स्त्री को, सारी कथित स्वच्छंदता और यूथविवाह की स्वीकृति के बावजूद, कामुकों का कंदुक ही समझा जाता है। फिर वह गण व्यवस्था में स्त्री की हैसियत पर टिप्पणी करते हुए कहता है, 'यह तो गण ही है, जहाँ नारी का सम्मान नारी के तौर पर होता है'...(वही, पृ 101) रोहिणी पुरुष वेश में पार्शवों से युद्ध करती है। साथ पर दस्युओं के आक्रमण के समय वह किसी भी पुरुष से कम सिद्ध नहीं होती। युद्ध के दौरान, कपिल द्वारा रात्रि में सैनिक कार्य से उसे मुक्त रखे जाने की स्थिति में, झगड़ालू न होने पर भी वह उससे झगड़ा करती है। भीम सर्वार्थक द्वारा स्वयं को नारी-'रत्न' कहे जाने पर उसे आपत्ति है- 'रत्न!' त्योरी बदलकर रोहिणी ने कहा- 'मैं निर्जीव रत्न नहीं हूँ। कोई कामुक राजा मेरी ओर नजर डालता तो मैं दिखला देती कि नारीत्व किसे कहते हैं....' (वही, पृ. 101)

वह अनेक बार इसे प्रमाणित करती है कि वह राजतंत्र की नारी न होकर गणतंत्र की नारी है। युद्धभूमि में मगध सेनापति चंद्र माद्रिक के हाथी नालागिरी पर फुर्ती से चढ़कर वह उसके महावत का अंकुश छीन लेती है, जिससे उसकी अपनी हथेली में गहरा घाव हो जाता है, लेकिन सिंह के प्राणों की रक्षा के साथ ही वह शत्रु सेनापति को बंदी बनाने में भी सफल होती है।

गण-व्यवस्था में स्त्रियों की ऊर्जा और उल्लास का संकेत देने के विचार से ही कदाचित् लेखक वामा मनोरथ का युग्म प्रस्तुत करता है। उनके उन्मुक्त व्यवहार द्वारा जैसे लेखक उनकी कुंठाहीनता और दास-संस्कारों के विरोध को ही रेखांकित करना चाहता है। अनेक आलोचकों ने राहुल सांकृत्यापन के उपन्यासों में चुंबन-महोत्सव और स्त्रियों के मुक्त-व्यवहार को लेकर आपत्ति की है। बज्जी युवतियाँ मुक्त चुंबन को अपने कुंठाहीन निर्बंध व्यवहार का संकेत-जैसा मानती हैं। 'मुनि-मोहिनी' के चुंबन महोत्सव जैसे दृश्यों में, मुझे लगता है, राहुल जी व्यवस्थाओं के वैषम्य को अंकित करने के लिए भले ही कुछ उत्साहातिरेक से काम ले रहे हों, लेकिन उनका मुख्य आग्रह गण समाज के सामूहिक उल्लास को ही अंकित करना है। उनके कथा-साहित्य में मदिरा की भूमिका को लेकर किसी को भी लग सकता है कि वे उसके प्रति गहरी आसक्ति रखते होंगे, जबकि उन्होंने कभी उसे छुआ तक नहीं। खान-पान, रास-रंग और उल्लास-ऊर्जा का यह सामूहिक प्रदर्शन गण समाज के प्रति राहुल जी के उत्साहातिरेक का ही परिणाम है। इसे

राजतंत्र के बंधे हुए, भीरु, संकोची और सहमे हुए समाज की स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में ही लिया जाना चाहिए। आचार-विचार और खान-पान का यह खुलापन राहुल की विश्व-दृष्टि का ही अंग है। सामूहिकता के आगे देवलोक-पितरलोक सब झूठे हैं। अपने सामूहिक लक्ष्य के प्रति समर्पित, मिल-बैठ कर खाना-पीना, बातचीत, प्रेम-व्यवहार ही इस सामाजिकता का उत्स है। इसके अभाव में गण-व्यवस्था का अस्तित्व ही संभव नहीं है। जिन्हें हम अपने पुरखे और देवजाति कहकर गौरव करते है, वे भी हमारी ही तरह मनुष्य थे। यह स्त्री का सम्मान और श्रम का समादर करने वाला समाज है। रोहिणी के सौंदर्य में सात्विकता की दीप्ति और ओज है। उसी से प्रेरणा लेकर क्षेमा, अंबपाली की परम्परा का तिरस्कार करके, खड्ग का अभ्यास करते हुए अपने हाथ में छाले डाल लेती है। स्त्रियों को युद्ध में भाग ले पाने की स्वीकृति के लिए वह सिंह का साधुवाद करती है।

'सिंह सेनापति' की परम्परा में ही 'जय यौधेय' (1944) राहुल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है। गणतंत्र बनाम राजतंत्र की बहस इसमें भी विस्तारपूर्वक अंकित है। इस उपन्यास का काल समुद्रगुप्त से प्रारंभ होकर उसके पुत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तक आता है। स्वयं लेखक के अनुसार इसमें सन् 350-400 ई० (गुप्त संवत् '30-'80) के भारत की राजनैतिक, सामाजिक अवस्था का चित्रण किया जाता है। उस समय यमुना-सतलुज तथा चंबल-हिमालय के बीच 'यौधेय' एक शक्तिशाली गणराज्य था। इसे अपने उपन्यास का विषय बनाने का कारण ही, जैसा कि राहुल इंगित करते हैं, इसके प्रति इतिहासकारों का क्रूर मौन है। वस्तुत: लंबे समय तक इसका अस्तित्व इतिहास की पर्तों के नीचे दबा पड़ा रहा। लेकिन बाद की खुदाई में मिले इस गणराज्य के सिक्कों ने चिल्ला-चिल्लाकर इसका साक्ष्य देना शुरू किया और फिर कईं ऐतिहासिक खोजों के परिणामस्वरूप डॉ. अलतेकर जैसे इतिहासविद् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'भारत से विदेशी कुषाणों के शासन को खत्म करने का श्रेय गुप्तवंश, भारशिव वंश का नहीं, यौधेयों को है ...' (भूमिका, पृ.1) महिमाशाली गुप्त वंश और भारशिव वंश के सामने यौधेयों को रखने से ही राहुल का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है।

इसी यौधेय गणराज्य के जय, जो इस उपन्यास का नायक है, की बहन सम्राट समुद्रगुप्त की पत्नी है- जिसे प्यार से वह 'आजुक्का' कहता है। इस नाते रामगुप्त और चंद्रगुप्त उसके भांजे होते हैं जय का बचपन गुप्तकुल में ही बीता है और वह अपने समयवयस्क चंद्रगुप्त के साथ खेल-कूदकर बड़ा हुआ है। जयशंकर प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी' से भिन्न राहुल आरंभ से ही चंद्रगुप्त को एक उदण्ड किंतु मेधावी किशोर के रूप में अंकित करते हैं। उसकी अपेक्षा उनकी सहानुभूति स्थिर और शांत स्वभाव वाले रामगुप्त के प्रति अधिक है। इसका कारण कालांतर में चंद्रगुप्त का यौधेयों के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार भी हो सकता है, क्योंकि सम्राट बन जाने के बाद पहले लोभ लालच और फिर शक्ति द्वारा वह जय को, और उसके माध्यम से संपूर्ण यौधेयगण को, वशीभूत करना चाहता है। रामगुप्त की हत्या और ध्रुवदेवी से चंद्रगुप्त के विवाह को राहुल राजतंत्र की एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में ही देखते हैं, अत: चंद्रगुप्त को वह नायकोचित सहानुभूति वे नहीं दे पाते जो उसे प्रसाद जी से मिली है।

गुप्त राजकुल में पल-पुसकर भी जय अपनी मूल प्रवृत्तियों को सुरक्षित रख पाने में सफल होता है। रनिवास में यवनी दासी कुलूपा से उसे विशेष स्नेह है और वह अपने जीवन की अनेक घटनाओं के साथ ही उसे यवन राज्यों और स्त्री एवं दासों की स्थिति आदि के विषय में भी बताती रही है। वह स्वयं देखता है कि समुद्रगुप्त के राजमहल में उसकी बहन भले ही पट्टमहिषी हो, लेकिन राजा की सेवा में भिन्न-भिन्न प्रांतों, देशों और जातियों की एक सहस्र से अधिक रानियाँ, दासियाँ और अन्य स्त्रियाँ हैं राजतंत्र की कामुकता, विलासिता, क्रूरता, और राज्यविस्तार के उन्माद के फलस्वरूप अकारण युद्ध और हिंसा के विरोध में गणराज्य का श्रम और पारस्परिक सौहार्द पर आधारित जीवन उसे बहुत प्रिय है।

डॉ० रामविलास शर्मा ने गणराज्यों में रक्तशुद्धता के राहुल के सिद्धांत के आधार पर कभी उन्हें नस्लवादी

प्रमाणित करने की कोशिश की थी। राहुल गणराज्यों में रक्तशुद्धता की बात गणों में पारस्परिक एकता और सद्भाव के लिए करते हैं। नस्लवाद दूसरों को हेय समझकर, वर्ण और नस्ल के आधार पर, दूसरों के प्रति घृणा के सहारे पनपता और फैलता है। नस्लवाद में दूसरों को हेय मानकर उन्हें दास बनाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है जबकि गणव्यवस्था अपनी स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने वाली व्यवस्था है। राजतंत्र की विलसिता और संपत्ति के प्रति मोह से सिंह और जय दोनों ही दु:खी हैं क्योंकि प्रकारांतर से यही बुराइयाँ गणराज्यों के विनाश का कारण भी बन सकती है। राहुल सांकृत्यायन ने रक्त शुद्धता द्वारा गण की एकता और शक्ति के अक्षुण्ण रखने पर बल दिया है। वैशाली की तुलना में गांधार की गणव्यवस्था सिंह को अधिक तर्क संगत लगती है क्योंकि वहाँ दास-प्रथा नहीं है, वर्ण या रंग का प्रश्न भी नहीं है क्योंकि आर्य और चंद परिवारों को छोड़कर सभी गांधार हैं। इसी के फलस्वरूप जिस तरह का भाईचारा गांधार में देखा जाता है उसके कारण वैसी गण प्रणाली वैशाली समेत कहीं के लिए भी एक आदर्श गण प्रणाली हो सकती है।

इस गणव्यवस्था के प्रति राहुल में एक विशेष प्रकार का पूर्वाग्रह अवश्य है जिसके कारण वे इसे एक सुखी, समृद्ध और समतावादी समाज-व्यवस्था के प्रति अपने सुस्पष्ट और घोषित मोह के कारण वे राजतंत्र को 'राजुल्ला' कहकर घृणा और और उपहास का शिकार बनाते हैं। इतिहास के प्रति एक वस्तुपरक दृष्टिकोण न अपना पाने के कारण वे सामंतवाद की ऐतिहासिक विकासशील भूमिका की उपेक्षा करते हैं। लेकिन फिर भी इसे नस्लवाद नहीं कहा जा सकता।

'जय यौधेय' में राहुल गण-राज्य का प्रतिदर्श बहुत-कुछ सोवियत संघ को मानते दिखाई देते हैं। लगता है जैसे वे 'बाईसवीं सदी' को ही इस यौधेय गण में उतार रहे हैं। सहकारी खेती का प्रयोग, वापियों, कुल्याओं और कुओं के नव-निर्माण के रूप में सिंचाई के साधनों में सादगी और मितव्ययता का आग्रह, स्त्री के शारीरिक सौंदर्य में श्रम की महत्ता आदि सारी बातें उन्हें स्तालिन-युगीन सोवियत संघ के नवनिर्माण की ओर ले जाती हैं। 'नवीन-यौधेय' शीर्षक पूरा अध्याय इसी नवनिर्माण की भावना से प्रेरित है। गणतंत्र की रक्षा के लिए चंद्रगुप्त की सेना से युद्ध फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध सोवियत जनता का युद्ध जैसा भी लग सकता है। युद्ध में विक्रम दिखाकर मृत्यु को वरण करने वाली सुनंदा के नाम पर 'सुनंदा-सरोवर' की स्थापना आदि की प्रेरणा के स्रोत स्पष्ट हैं।

इतिहास पर अपने आदर्शों और पूर्वाग्रहों को आरोपित करने वाली राहुल की इस 'पद्धति' पर यशपाल ने दिलचस्प प्रतिक्रिया की है। यशपाल मानते हैं कि राहुल कथा कहकर अपने पाठकों को 'बहलाना' अपना काम न मानकर उन्हें 'समझाना' अपना काम समझते हैं... 'और समझाने के लिए उनके पास इतना अधिक है कि उस पर चढ़ाई गई कला की चाशनी में से औषध फूट पड़ती है। कहानी के लिए जहाँ तक कल्पना का सवाल है, 'जय यौधेय', 'सिंह सेनापति' और दूसरी अनेक वैचित्यपूर्ण कहानियों के लेखक के पास कल्पना का तो अभाव नहीं परन्तु कल्पना को दुलार से सजाने का संतोष और श्रम नहीं, प्रगतिवाद का जोर इतना है कि कहानी अपने लाग-लपेट को सँभालकर भावना और संदेश के साथ चल नहीं पाती... 'जय यौधेय' में एक स्थल पर तक्षशिला के प्रसंग में राहुल जी शोषण की प्रणाली के विरुद्ध जो उग्र और प्रामाणिक तर्क देते हैं, उनकी भाषा बीसवीं सदी की मार्क्सवादी भाषा है। इस भाषा का प्रयोग 'जय यौधेय' के समय में ठीक वैसा ही है जैसा भगवान रामचंद्र का घड़ी में समय देख कर पुष्पक विमान पर चढ़ना। इसे हम परिस्थिति की उपेक्षा और अपनी भावना और विचार की प्रधानता कहेंगे। अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों में Objective न रहकर Subjective हो जाना कहेंगे। यह दोष कला में यथार्थ का रंग बिगाड़ देता है और प्रगतिवाद और मार्क्सवादी पद्धति के अनुसार यह विचार, तर्क और निरूपण की विश्वास योग्य राह नहीं. ..' ('विप्लव' नवम्बर' 47, पृ. 23) राहुल के संदर्भ में यशपाल के इस मूल्यांकन का महत्व इसलिए है कि यह किसी पेशेवर आलोचक द्वारा न किया जाकर एक

सहयात्री रचनाकार द्वारा मित्र दृष्टि से किया गया मूल्यांकन है। यशपाल पर्याप्त वस्तुपरक ढंग से राहुल की कलागत सीमाओं की ओर संकेत करते हैं इन सीमाओं के विरुद्ध सफल संघर्ष का प्रमाण वे दिव्या में दे चुके थे।

राहुल सामान्यत: ज्ञात और प्रचलित इतिहास को अपनी रचनाओं का उपजीव्य नहीं बनाते। वे एक विशेष उद्देश्य से परिचालित होकर इतिहास की पृष्ठभूमि का उपयोग करते हैं। समान विचारों वाले व्यक्ति और चिंतक किस प्रकार उनके प्रेरणा-स्रोत बनते हैं इसके उदाहरण 'मधुर स्वप्न' (1950) के मज्दक और 'विस्मृत-यात्री' (1954) के नरेन्द्रयश हैं। 'मधुर स्वप्न' का द्रष्टा मज्दक है, जिसने आज से शताब्दियों पूर्व अयरान में शोषण और उत्पीड़न से मुक्त एक समतावादी समाज का सपना देखा था। कन्नड़ लेखक निरंजन के 'मृत्युंजय' में इसी प्रकार का सपना ईसवी सन् से एक शताब्दी पूर्व रोमन साम्राज्य की पृष्ठभूमि में उसके नायक ने देखा था। ऐसे सपने सामान्यत: चरितार्थ होने के लिए नहीं होते, जैसे स्पार्टकस का सपना भी पूरा नहीं हुआ, लेकिन उनके कुचल दिए जाने के बाद भी उनकी गंध दीर्घकाल तक बनी रहती है। तत्कालीन ईरान के सुस्थापित सासानी राजतंत्र की क्रूरताओं, धार्मिक कट्टरता और संपत्तिगत विषमता के विरोध में अन्दर्जगर मज्दक ने समता और सौहार्द का संदेश प्रचारित किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भोग की विषमता ही जनता के दु:ख का मूल कारण है। अत: राजतंत्र में भोग के निर्बाध और उच्छृंखल एकाधिकार को वह तोड़ने का प्रयास करता है। उसके विचारों की शक्ति और मौलिकता से प्रभावित होकर जनता बहुत बड़ी संख्या में उसके साथ हो जाती है। मज्दक-संप्रदाय, राजतंत्र के विरोध में, समता के मधुर स्वप्न के लिए अपार शक्ति प्राप्त कर लेता है। दिहबगान ग्राम उसके आदर्शों के प्रयोग का मूल केंद्र बनता है। जैसाकि स्वाभाविक है, अपने विचारों की प्रखरता और मौलिकता के कारण मज्दक राजकोप का शिकार होता है। उसने संपत्ति के विषम विभाजन को ही शोषण का मूलाधार माना। संपत्ति का मोह घर-परिवार और संतान के प्रति मोह के कारण होता है। अत: उसने घोषणा की कि इस बुराई से बचने के लिए घर-परिवार का उन्मूलन अनिवार्य है। इसके लिए उसने संपत्ति और पत्नी पर सामूहिक अधिकार की बात उठाई। सारी संपत्ति सबकी संपत्ति और राष्ट्र की स्त्रियाँ और संतानें सामूहिक पत्नियाँ और संताने होंगी तो इस विषमता से स्वत: ही मुक्ति मिल जायगी। अपने इन्हीं विचारों के कारण राजसत्ता द्वारा मज्दक के विरुद्ध भोग परायणता और व्याभिचार को प्रोत्साहित करने का आरोप लगाया गया। कहा गया कि उसने समूचे राष्ट्र की स्त्रियों को वेश्यायें बनाने का प्रयास किया है और राष्ट्र की नीति एवं मर्यादा को समाप्त कर दिया है।

परिशिष्ट में राहुलजी ने ईसाई, पारसी और मुस्लिम स्रोतों से संकलित जो सामग्री दी है उससे मज्दक के विचारों की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है। मज्दक के समता के सिद्धांतों का प्रचार राहुल को अतिरिक्त उत्साह से भर देता है। अपने इसी तर्कातीत उत्साह के कारण वे सामूहिक पत्नी के सिद्धांत को भी सहज स्वीकार्य मान कर प्रस्तुत करते हैं। मज्दक के संपूर्ण दर्शन को भी वे आलोचनात्मक दृष्टि से नहीं देखते। यही कारण है घर-परिवार के उसके उच्छेद के आग्रह को भी अनदेखा करके वे आगे बढ़ जाते हैं। उनके इस उत्साहातरक का लाभ, इसे ही कम्युनिस्ट नैतिकता का प्रतिनिधि रूप मानकर, उनके विरोधियों ने भरपूर उठाया है।

अज्ञात प्रायचरित-नायक की खोज के क्रम में ही राहुल का उपन्यास 'विस्मृत यात्री' (1954) भी है जो छठी शताब्दी के बौद्ध भिक्षु और यायावार नरेन्द्र यश को केंद्र में रखकर लिखा गया है। यहाँ राहुल के पिछले उपन्यासों की भांति कोई बाह्य संघर्ष नहीं है। नरेनद्र यश के सम्मुख चीनी यात्री फाह्यान का उदाहरण है, जो उससे कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ था और चीनी भाषा में जिसके यात्रा संस्मरण तब लोकप्रिय हुए थे। नरेन्द्रयश के ज़ीवन का अंतिम भाग, अपनी जन्म भूमि स्वात से सहस्रों मील दूर, चीन में समाप्त होता है, वहीं वह अपने संस्मरण लिखता है। उस स्थिति में इनमें एक विशेष प्रकार का भावात्मक ऐश्वर्य सहज ही दर्शनीय है। राजतंत्र बनाम गणतंत्र के संदर्भ में उसका दृष्टिकोण राहुल के पूर्व नायकों, सिंह और जय से भिन्न नहीं है, लेकिन वैसी उग्रता भी उसमें नहीं है। उसका यह आकर्षण 'गणराज्यों की रानी' वैशाली के प्रति उसके सघन आकर्षण से

स्पष्ट है। लेकिन बुद्धिल की यह बात समझने में उसे अधिक परेशानी नहीं होती कि गणराज्यों का विनाश एक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। यदि वैशाली गणराज्य अजातशत्रु और उसके वंश के शासन से अपने को स्वतंत्र रखने में सफल भी हो जाता तो वह नंद वंश का मुकाबला नहीं कर सकता था। उसका विनाश अवश्यंभावी था। वैशाली के पराभव के बाद जब लिच्छवियों ने नेपाल में राज्य स्थापित किए तो अपनी प्रकृति में वे गणराज्य न होकर गुप्तों और मौखरियों के समान एकछत्र और निरंकुश राज्य ही थे।

राहुल ने नरेंद्र यश के रूप में एक आदर्श बौद्ध भिक्षु की कल्पना की है। वर्णव्यवस्था वाले भारतीय समाज में चांडालों और शूद्रों के प्रति क्रूर और गर्हित व्यवहार उसे कष्ट पहुँचाता है। चिकित्सा शास्त्र में इसलिए उसकी गहरी रुचि है क्योंकि उससे मानवजाति की सेवा का अवसर मिलता है। भारतीय जीवन में गहराई से घुसे अंधविश्वास उसे विचलित करते हैं। लेकिन अंध विश्वास और लोक विश्वास के अंतर का उसका विवेक कभी धूमिल नहीं होता। उसकी तरुणाई के दिनों में उसकी प्रिया मद्रा को बलात् मिहिर कुल के रनिवास में डाल लिए जाने की घटना से उसके जीवन की दिशा बदल जाती है। सिंहल-यात्रा में अपने मित्र बुद्धिल की हत्या का भी उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। चीन-यात्रा का बुद्धिल का सपना ही वस्तुतः नरेंद्र यश को चीन ले आता है- अपने मृत मित्र की इच्छा को साकार करने की कृतज्ञता के फलस्वरूप। एक बौद्ध भिक्षु के रूप में वह पांसुकूलिक और पिंडपातिक भिक्षु के रूप में अपना निर्वाह करता है। अर्थात् नया चीवर न धारण करके घूरे पर पड़े चीथड़ों से अपना चीवर तैयार करता है और निमंत्रण न स्वीकार कर केवल भिक्षा में मिले अन्न पर ही निर्भर करता है। विनयपिटक में बुद्ध का विधान है कि भिक्षु अपने शरीर की आठ चीजों तक ही सीमित रहे– गृह, आराम आदि वस्तुएँ संघ की संपत्ति हैं। बौद्ध संघों के स्थविरों को विलास और वैभव की ओर आकृष्ट देखकर उसे हार्दिक क्लेश होता है। नगरहार और अन्य स्थानों पर बौद्ध भिक्षुओं द्वारा बुद्ध के 'केश' आदि की कहानियाँ प्रचारित करके श्रद्धालुओं को भ्रमित करने की प्रवृत्ति उसे क्लेश पहुँचाती है। अन्य धर्मों की भांति बौद्ध धर्म के इन व्यवसायियों की भी वह कठोर भर्त्सना करता है।

बौद्ध धर्म समता और करुणा पर बल देता है। इसी कारण यवनों और शकों ने उसके प्रति अपना आकर्षण दिखाया क्योंकि वर्ण प्रधान ब्राह्मण व्यवस्था में उन्हें स्वीकृति नहीं मिल सकती थी। उनके राजछत्र ग्रहण करने के कारण ब्राह्मण उनसे डरते थे, अपने स्वार्थ के लिए उनकी चाटुकारिता भी करते थे, लेकिन उन्हें घुलामिला नहीं सकते थे। तथागत ने जाति, वर्ण और धन की अपेक्षा शील को विशेष महत्व दिया। राहुल बौद्ध धर्म में प्रवेश करती विकृतियों के प्रति पूरी तरह सजग हैं, लेकिन वे कहीं भी यशपाल की भांति उसे निषेधात्मक रूप में प्रस्तुत नहीं करते। अपनी आंतरिक प्रकृति में बौद्ध धर्म उन्हें मार्क्सवाद के बहुत निकट लगता है। बिना किसी आवेश और उग्रता के नरेंद्र यश इसे अपने जीवन से प्रमाणित करता है- अपने को एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए।

राहुल ने हमेशा उन विषयों और व्यक्तियों पर लिखा जिनके संबंध में हिंदी में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं थी। 'दिवोदास' (1962) से पूर्व वे विस्तारपूर्वक इस विषय पर अपने ग्रंथ 'ऋग्वैदिक आर्य' (1956) में लिख चुके थे। 'दिवोदास' की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है, 'मेरे ऋग्वैदिक आर्य' ग्रंथ को इस ग्रंथ की बड़ी भूमिका समझिए...' (दिवोदास, भूमिका पृ. 1) 'ऋग्वैदिक आर्य' लिखे जाने के कारणों से 'दिवोदास' को लिखे जाने का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है...' वस्तुतः ऐसी एक पुस्तक को अपनी या पराई किसी भी भाषा में न पाकर मुझे कलम उठानी पड़ी। ऋग्वेद से ही हमारे इतिहास की लिखित सामग्री का आरंभ होता है। जिस प्रकार एक ईश्वर झूठ के साथ-साथ महान अनिष्टों का कारण है, पर अनेक देवता सुंदर कला का आधार होने के कारण अनमोल और स्पृहणीय हैं, उसी तरह वेद भगवान या दिव्य पुरुषों की वाणी न होने पर भी अपनी सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक सामग्री के कारण हमारी सबसे महान और अनमोल निधि हैं, जिन्होंने इन्हें रचा और जिन्होंने पीढ़ियों तक कंठस्थ करके बड़े प्रयत्न

से इसे सुरक्षित रखा वे हमारी हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं'... (ऋग्वैदिक आर्य भूमिका पृ. 5) ऋग्वैदिक आर्य में राहुलजी ने तत्कालीन खोजों और उपलब्ध सामग्री के आधार पर वैदिक समाज और संस्कृति को समझने-समझाने का प्रयास किया है। आज आर्यो के मूल स्थान संबंधी बहस बहुत उग्र रूप धारण कर चुकी है और इतिहासविद् दो परस्पर विरोधी विचार शिविरों में बंट गए है। इस विवाद को फिलहाल छोड़कर राहुल के 'ऋग्वैदिक आर्य' के संबंध में यही कहना ठीक होगा कि उसे कदाचित् हिंदी में वैदिक समाज का पहला समाज शास्त्रीय अध्ययन कहा जा सकता है। ऋग्वेद को वे हमारे देश के ताम्रयुग की देन मानते हैं। आर्यों की संस्कृति प्रधानत: पशुपालों की थी। खेती वे जानते थे, लेकिन वही उनकी जीविका का मूल साधन नही थी। ऋग्वैदिक आर्य केवल भारत से ही संबंध नहीं रखते थे, उनकी भाषा और पूज्य भावनाओं संबंधी भारत से बाहर भी थे। भारत से बाहर सबसे निकट संबंधी ईरानी थे। सप्त सिंधु में आर्यों के संपर्क में आने वाले किरातों या दस्युओं से उनका लंबा संघर्ष चला। स्वयं आर्यों के बीच भी स्पर्धा और प्रतिद्वन्द्विता के कारण ईर्ष्या और मतभेद पनपने लगे थे। राहुल पहले दिवोदास के पुत्र सुदास पर लिखना चाहते थे। लेकिन फिर शायद उन्हें लगा कि आरंभिक बिंदुओं के तौर पर सुदास से भी अधिक महत्वपूर्ण दिवोदास हो सकता है। सुदास के काल में आर्यों के बीच जो गृहयुद्ध जैसा हुआ, उसे केंद्र में रखकर वे इस श्रृंखला को बढ़ाना चाहते थे। 'दिवोदास' राहुल का अंतिम उपन्यास है। उनकी अस्वस्थता की धीमी-धीमी आहट यहाँ सुनी जा सकती है। एक लघु उपन्यास के रूप में उसके लिखे जाने का मूल कारण भी उनकी अस्वस्थता ही थी।

राहुल के उपन्यासों में 'दिवोदास' संभवत: सर्वाधिक सुगठित है। इतिहास को लेकर यहाँ राहुल के कोई पूर्वाग्रह नहीं हैं। उनका बस एक ही आग्रह है कि हमारे पूर्वज भी हमारी ही भांति हाड़-मास के सामान्य जीव थे और उन्हें चमत्कारों एवं आध्यात्मिक-रहस्यात्मक आशयों से मुक्त करके देखा जाना चाहिए। उनकी सहानुभूति, एक लेखक के रूप में, न ही आर्यों के साथ है और न ही किरातों या दस्युओं के साथ। संक्षेप में उन्होंने बहुत सहज ढंग से ऋग्वैदिक आर्यों के जीवन का भरसक एक भरापूरा चित्र 'दिवोदास' में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आर्यों के विषय में, जैसाकि कहा जा चुका है, तब तक हुई खोजों के आधार पर ही वे अपने निष्कर्ष निकाल सकते थे। आज भी इन विवादों का कोई सर्वसम्मत और सर्वस्वीकार्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका है। राहुल की यही मान्यता थी कि आर्य बाहर से आए--यहाँ के मूल निवासियों-पणियों और किरातों की अपेक्षा वे कम सांस्कृतिक थे। पणियों पर वे अत्याचार भी करते थे, लेकिन उनके बिना उनका काम भी नहीं चलता था। दैनिक जीवन की वस्तुओं और वाणिज्य के लिए वे उन्ही पर निर्भर थे। पशुओं में अश्व आर्यों का सबसे प्रिय और आवश्यक पशु था। दिवोदास भेंट में मिले अश्व 'दध्रिका' को बेहद प्यार करता है और आगे भी उसी के नाम पर अपने अश्वों का नाम रखता है। आर्य अपने संबंधियों से भी अधिक अपने अश्वों को प्यार करते थे। ऐतिहासिक उपन्यास के संबंध में आचार्य शुक्ल की धारणा थी कि उसे तत्कालीन जीवन का अंकन करना चाहिए। ऐतिहासिक उपन्यास के अच्छे और महत्वपूर्ण उदाहरणों के रूप में उनके सामने बंकिम चंद्र और राखालदास बंद्योपाध्याय के उपन्यास थे। राखाल बाबू के 'शशांक' का तो उन्होंने किंचित् परिवर्तन और संशोधन के साथ अनुवाद भी किया है। किसी भी काल-विशेष को उसके वास्तविक रूप में चित्रित किए जाने के लिए उस युग को, उसमें रहने वाले मनुष्यों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। 'दिवोदास' में राहुल आर्यो के खान-पान, वेशभूषा, आभूषण, हथियारों आदि का बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन करते है। चाहे पक्की ईटों और मिट्टी से बने पणिग्राम हों, या घास-फूस की लकड़ी के टट्टरों से बनी भरद्वाज आश्रम की झोपडियाँ, जो अपनी दृढ़ता में गर्मी-वर्षा सह सकने में समर्थ थीं, राहुल विस्तारपूर्वक इन सबका वर्णन करते है। दस्युराज शंबर की पुरियों का वर्णन राहुल ने इसी तरह वास्तविक और विश्वसनीय रूप में किया है। राहुल बहुत से पौराणिक मिथकों की

मानवीय व्याख्या भी करते है। जिस ऐतिहासिक वस्तुपरकता का उल्लेख उपन्यास के संदर्भ में किया जा चुका है उसका एक उदाहरण शंबर और दिवोदास के परस्पर युद्ध में देखा जा सकता है। घरेलू और खेतिहर कर्मियों के रूप में विजित दस्युओं से बेगार ली जाने की प्रथा संभवत: शुरू हो चुकी थी। दिवोदास के अभिषेक के बाद जब आए हुए अतिथि विदा हो जाते है तो झाड़-बुहार और सफाई के समय छूटी हुई वस्तुएँ ही उन कर्मियों की बेगार का प्रतिफल था। झाड़-फूंक, ओझाई आर्यों के दैनिक जीवन का अंग बनने लगी थी।.... आर्यों और किरातों एवं पणियों के बीच सांस्कृतिक अंतरावलम्बन की सुदीर्घ प्रक्रिया को 'दिवोदास' पर्याप्त विश्वसनीय रूप में अंकित कर सका है।

राहुल की अभिरुचियों और रचनात्मक सरोकारों की दृष्टि से 'वोल्गा से गंगा' को उनकी प्रतिनिधि रचना माना जा सकता है। उसकी लोकप्रियता को देखकर लगता है कि ऐसा हुआ भी है। इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए राहुल लिखते हैं, 'मानव आज जहाँ है, वहाँ प्रारंभ में ही नहीं पहुँच गया था, इसके लिए उसे कड़े संघर्षों से गुजरना पड़ा। मानव-समाज की प्रगति का सैद्धांतिक विवेचन मैंने अपने ग्रंथ 'मानव-समाज' में किया है। इसका सरल चित्रण भी किया जा सकता है, और उससे प्रगति को समझने में आसानी हो सकती है, इसी ख्याल ने मुझे 'वोल्गाा से गंगा' लिखने के लिए मजबूर किया' ...(भूमिका, पृ. 6) मानव-सभ्यता के इस विकास को अंकित करने के लिए राहुल ने केवल भारोपीय-हिंदी-यूरोपीय-जाति को ही लिया है। रांगेय राघव की 'महायात्रा' की भांति उन्होंने अपना फलक मिस्री और सुरियानी सभ्यता तक नहीं फैलाया है। माया नंदमिश्र की 'प्रथम शैल पुत्रीच' की भांति इसका काल खण्ड दो सहस्राब्दियों तक विस्तृत भी नहीं है। ई. पू. 6000 वर्ष से शुरू करके राहुल पुस्तक के रचनाकाल अर्थात् सन् '42 के स्वाधीनता आंदोलन तक आते है। बीस कहानियाँ के माध्यम से, मानव-समाज के भौतिक-सांस्कृतिक विकास और उसके समाज शास्त्रीय आकलन को ही उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया है।

'वोल्गा से गंगा' के प्रकाशन के लगभग तत्काल बाद 'हंस' में डॉ. भगवत शरण उपाध्याय ने उसकी बहुत विध्वंसात्मक आलोचना की। यशपाल की 'दिव्या' की भांति वे राहुल की भी कृतघ्नता से क्षुब्ध थे। इन समीक्षाओं का आज इतना ही महत्व है कि वे इन रचनाओं से कहीं अधिक स्वयं डॉ. उपध्याक्ष को समझने के सूत्र उपलब्ध कराती है। राहुल और रांगेय राघव दोनों ने ही इस दिशा में किए गए अपने कार्य के संबंध में इसे विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया है कि इतने बड़े काम में और वह भी लगभग एक नयी दिशा में, अनेक त्रुटियाँ संभव है। कोई भी लेखक अपने द्वारा प्रस्तुत तथ्यों की सर्वस्वीकार्यता का दावा नहीं कर सकता।

डॉ. भगवत शरण उपध्याय 'वोल्गा से गंगा' की आरंभिक कहानियों पर प्राय: कोई टिप्पणी नहीं करते। सिंधु सभ्यता और परवर्ती काल की कहानियों के ऐतिहासिक तथ्यों की कतिपय विसंगतियों की चर्चा अत्यन्त आवेशपूर्ण शैली में उन्होंने की है। उनका आरोप है कि असुरों के सारे कृत्यों और आचार-विचार को राहुल ने द्रविड़ों पर आरोपित कर दिया है। सिंधु सभ्यता में एक नर्तकी की मूर्ति के आधार पर राहुल जी ने उस समाज में वेश्या के अस्तित्व को स्वीकृति दी है जबकि भगवत शरणजी के अनुसार 'नर्तकी' और 'वेश्या' एक नहीं होती। इसी तरह परवर्ती काल के चित्रण में विलासी और व्याभिचारी पृथ्वीराज चौहान की तुलना में जयचंद्र को 'चरित्र नारी-सेवी' कहना भगवतशरण जी को इतिहास का अपमान लगता है। डॉ. उपाध्याय का एक आरोप, जो पर्याप्त संगत है, इन कहानियों में राहुल के प्रचारक रूप को लेकर है। 'बाबानूरदीन', 'सुरैया' और 'मंगलसिंह' जैसी कहानियों में यह प्रवृत्ति बहुत मुखर है। 'सुरैया' में कमाल की सामुद्रिक यात्रा और भारत में मुद्रण-कला का स्वप्न इसी प्रकार की विसंगतियों के उदाहरण हैं। अकबर-कालीन इस कहानी के दौर में यूरोप में भी छापे खाने नहीं खुले थे। इसी प्रकार 'मंगलसिंह' में, जो 1857 में स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि पर है, कांग्रेस के जन्म से भी दो युग पूर्व, भारत में समाजवाद के सिद्धांतों पर गदर के परिचालन की राहुल जी की कल्पना एक गंभीर काल विरुद्ध असंगति का उदाहरण है। डॉ. उपाध्याय राहुल की इन कहानियों पर भविष्य-वचन-Historical

Pre-saying–का आरोप लगाते है अर्थात् भविष्य में होने वाली घटनाओं की ओर उनके पात्र पहले ही संकेत कर देते है। डॉ. भगवत शरण उपाध्याय में तथ्य न हों, ऐसा नहीं है। लेकिन उसकी सबसे बड़ी सीमा यह है कि वह अपनी प्रकृति में एकांगी है। उनकी आलोचना राहुल जी के लक्ष्य, सत्प्रयास और परिश्रम की पूरी तरह अवहेलना करके चलती है। इतिहास को लेकर राहुल जी के कुछ गंभीर पूर्वाग्रहों की चर्चा उनके उपन्यासों के संदर्भ में की गई है। लेकिन फिर भी उनके कार्य का स्थायी महत्व है। मानव-समाज की प्रगति के प्रयासों को इन कहानियों के प्रमुख पात्रों के माध्यम से अंकित किया गया है। सामाजिक विकास और परिवर्तन की इस प्रक्रिया में ही मानव जाति के दुद्धर्ष संघर्ष और आशा का संदेश निहित है।

'कनैला की कथा' (1957) में राहुल एक बार फिर अपनी गहरी अभिरुचि वाले अपने प्रतिनिधि कथा-रूप की ओर मुड़ते है, जैसा वे 'सतमी के बच्चे' में 'स्मृति ज्ञान कीर्ति' लिखकर इसका संकेत दे चुके थे। कनैला राहुल का पितृग्राम था, लेकिन चूंकि उनका अधिकांश बचपन पंदहा में नाना के यहाँ बीता था, कनैला के प्रति एक ऋण शोध का भाव उनके मन में था। वहाँ रहने वाली जातियों और खुदाई में प्राप्त सामग्री को देखकर राहुल के मानस-पटल पर उसका अतीत साकार होने लगता है। वस्तुत: उनके इस सर्जनात्मक उत्खनन का परिणाम ही 'कनैला की कथा' है। ई. पू. 1300 वर्ष से लेकर वर्तमान काल तक कनैला किस प्रकार बनता-बिगड़ता रहा, किस तरह के उतार-चढ़ाव उसने देखे यह सचमुच अपने में एक रोचक और उत्तेजक कल्पना है। सरकारी कागज-पत्रों में जिसे आज 'कनैला-कर्नहट' लिखा जाता है, जो आज भी एक गुमनाम गाँव-सा है, और राहुल की किशोरावस्था तक जहाँ बैलगाड़ी से जाना एक कठिन और दुष्कर कार्य था, वह कभी किरात, निषाद् और दमिल जातियों के सांस्कृतिक और रक्त मिश्रण का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। 'कनैला की कथा' कहानी की विधा में एक उल्लेखनीय प्रयोग है जिसमें अनेक साहित्य रूप मिले-जुले रूप में सामने आते है। राहुल कनैला के माध्यम से एक तरह से श्रमजीवी वर्ग के पलायन के समाज शास्त्रीय कारणों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करते है। इस छोटे से, गाँव को केंद्र में रखकर राहुल हजारों वर्षों के सामाजिक उतार-चढ़ाव, परिवर्तन तथा विकास-धारा उद्घाटित करते चलते है।

राहुल साहित्य की किसी एक विधा से बँधने वाले लेखक नहीं थे। गद्य की प्राय: सभी विद्यों में उन्होंने काम किया है। इसके अलावा उन्होंने दर्शन, इतिहास, भाषा विज्ञान के साथ ही प्राचीन बौद्ध और अपभ्रंश साहित्य के उद्धार और अनुवाद का भी ऐतिहासिक कार्य किया है। हिंदी में इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टि से उपयोग और विनियोग करने की दृष्टि से वे पायोनियर लेखक हैं। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा उन्होंने इतिहास की नई संभावना का द्वार खोला। हिंदी के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास- 'दिव्या', 'वाणभट्ट की आत्मकथा' और 'मुर्दों का टीला' आदि- राहुल की जोती गई धरती पर ही उगी फसल के उदाहरण है। अपनी अनेक सीमाओं के बीच और बावजूद राहुल को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षितिज को अभूतपूर्व विस्तार दिया। उनके उपन्यासों को यदि उनके विकास-क्रम में देखा जाए तो उनमें विकास की एक सुस्पष्ट गति दिखाई देती है। यशपाल और रांगेय राघव की प्रतिक्रियायें उनके आरंभिक उपन्यासों से संबद्ध है। 'विस्मृत यात्री' और 'दिवोदास' में राहुल रचनातंत्र के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजग दिखाई देते है। इतिहास संबंधी उनकी दृष्टि में भी पूर्वाग्रहों की जगह वस्तुपरकता बढ़ी है।

एक सच्चे मार्क्सवादी की तरह राहुल लेखन को भी बहुत कुछ एक सामाजिक-कर्म के रूप में देखते थे। जो बन सका, उन्होंने कर दिया, आगे इस काम को अब दूसरे साथी करेंगे। अपनी रचनाओं को खाद की तरह इस्तेमाल किए जाने की लेखकीय विनम्रता उनके पास थी। यह विनम्रता उनके लिए मुखौटा नहीं थी। उनके कथा-कर्म से बहुत कुछ सीखकर ही, क्योंकि बड़े लेखकों की असफलता भी दूसरों को सिखाती है, परवर्ती लेखकों ने हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यास को समृद्ध किया है। इस संदर्भ में राहुल की भूमिका का यही ऐतिहासिक उपन्यास महत्व भी है। ■

राहुल की परिवर्तनकामी इतिहास दृष्टि का सूचक : मध्य एशिया का इतिहास*

▪ प्रो. लाल बहादुर वर्मा

इतिहास के विद्यार्थी यह जानते हैं- कि चलन यह है- कि इतिहास जानने से पहले इतिहासकार को जान लिया जाए तो बेहतर होता है। वैसे राहुल के इतिहासकार को यहाँ बैठा हुआ हर व्यक्ति जरूर जानता है। लेकिन उनके मध्य एशिया के इतिहास को लेकर जिस तरह की चर्चा हुई है, उसमें राहुल का वह इतिहास अधिक चिन्हित नहीं हो पाया जिसकी ओर प्रो. रणधीर सिंह ने इशारा किया था। इसलिए मैं अपनी बात वहीं से उठाऊँगा।

यह सच है कि हिन्दुस्तान में बॉल्तेयर, गिब्न, रांके या टॉयनबी जैसा इतिहास नहीं है लेकिन यह भी सच है कि शायद दुनिया में राहुल सांकृत्यायन जैसा भी इतिहासकार कोई नहीं है। हमारी मातृभाषा हिन्दी दुनिया की और भाषाओं को कौन कहे, अपने देश की भाषाओं के विकास क्रम में भी, खासतौर से समाज विज्ञान के क्षेत्र में थोड़ी पिछड़ गई। लेकिन उस हिन्दी का अकेला राहुल भारी पड़ेगा किसी भी भाषा पर। इसलिए ऐसे राहुल के इतिहासकार को चिन्हित करना बहुत जरूरी है।

किसी भी इतिहासकार की इतिहास दृष्टि उसकी विश्व दृष्टि का ही अंग होती है और राहुल की विश्वदृष्टि तो विकासमान थी, उसमें इतिहास दृष्टि को लेकर जो एक मुद्दा अभी भी लगातार बहस में रहता है, उसकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा।

प्राय: यह कहा जाता है कि इतिहास में वस्तुगत का, वस्तुनिष्ठता का जो प्रश्न है वह निर्णायक होता है और उस संबंध में जो वस्तुनिष्ठ है, उससे उम्मीद की जाने लगती है कि वह अपनी पद्धति में जितना वस्तुनिष्ठ है उतना ही वह अपनी विचारधारा में भी वस्तुनिष्ठ होगा। मेरा, आपका भी शायद मानना होगा कि इतिहासकार विचारधारा में वस्तुनिष्ठ हो ही नहीं सकता। वह वहाँ आत्मनिष्ठ होगा। उसका कमिटमेंट होगा और यदि वह अच्छा इतिहासकार है, तो अपनी पद्धति में वह पूरी तरह वस्तुनिष्ठता को निभा सकता है। राहुल उसी तरह का इतिहासकार है जिसने इतिहास की उस अवधारणा को पुष्ट किया जिसमें इतिहास, इतिहास निर्माण के लिए होता है।

अतीत का ज्ञान अपने में कोई महत्व नहीं रखता। अतीत के सार संकलन से जब इतिहास बनता है तो उससे जो हमें ऊर्जा मिलती है, जो हमें दृष्टि मिलती है, वह इतिहास निर्माण भी करती है। और इसलिए इतिहासकार, अगर वह सही मायने में इतिहासकार है तो वह निश्चित एक्टिविस्ट होगा ही और एक्टिविस्ट इतिहासकार निश्चित रूप से इतिहास निर्माण में लगा ही होगा और ऐसी स्थिति में राहुल ने जब इतिहास लेखन किया तो चाहे वह मध्य एशिया का इतिहास हो, जो औरों से अलग है, या और कोई लक्ष्य एक ही था-इतिहास बोध से इतिहास निर्माण की ओर। मध्य एशिया के इतिहास को राहुल के ऐतिहासिक गल्प से – 'अकबर' लिखी, 'पुरातत्व ग्रंथावली' पर जो बातें कही – उनसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। उन्होंने जिस तरह का भी इतिहास लेखन किया है उससे उनका समग्र रूप देना पड़ेगा। उन्होंने मध्य एशिया का इतिहास लिखा जिसको पढ़ने के लिए जैसा कि उनके मित्र के. पी. जायसवाल कहते हैं-कई लोगों को हिन्दी सीखनी पड़ी क्योंकि उस जमाने में इस तरह का ग्रन्थ अंग्रेजी में भी उपलब्ध नहीं था। और जो कुछ भी स्त्रोत थे, जो रूस में उपलब्ध थे, जो रूसी भाषा में या जो भी पुरातत्विक शोध हुए, केवल रूस में हुए थे, जहाँ तक सबकी पहुँच नहीं थी। इसलिए शोध के स्तर पर जैसा कि भगवत शरण उपाध्याय ने अपने एक लेख में उसकी समीक्षा करते हुए कहा था, ''जो कुछ हो सकता था राहुल ने कर डाला-कुछ छोड़ा नहीं।'' तो जहाँ वह लिखा था वहीं उन्होंने 'वोल्गा से

गंगा', होते हुए 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो' तक वे आए। यानी इतिहास लेखन से लेकर इतिहास निर्माण तक की यात्रा की। उसमें अगर 'मध्य एशिया के इतिहास' में अतीत के स्रोतों का समुचित वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन है तो वो इतिहास से मिली हुई उस दृष्टि का करना क्या है, इसके लिए 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो' तक की यात्रा है। उसका लक्ष्य केवल यह है कि हमें दुनिया को बदलना है। इसलिए राहुल वह इतिहासकार नहीं है जो केवल दुनिया को जानना चाहता है। वह दुनिया को बदलने वाला इतिहासकार हैं और इसी दृष्टि से मध्य-एशिया के इतिहास का भी मूल्यांकन, मेरे ख्याल से होना चाहिए।

मैं उनके तरह-तरह के इतिहास लेखन के प्रति आपका ध्यानाकर्षण करूँगा। आप सब विद्वतजन हैं। सब जानते है, समझदार लोग है। 'मध्य एशिया का इतिहास' निश्चित रूप से जिस समय लिखा गया, उस समय शायद हिन्दुस्तान में या हो सकता है अंग्रेजी में भी उस विषय पर वैसी कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। वही शायद सर्वोत्तम ग्रंथ था। बाद में निश्चित ही बहुत कुछ ऐसा हुआ है, इससे बातें आगे बढ़ी हैं। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि 'मध्य एशिया का इतिहास' अंतिम ग्रंथ है और मध्य-एशिया के इतिहास के बारे में जो कुछ भी जानने योग्य है, वो सब कुछ उसमें है। शोध की यात्रा बहुत बड़ी है। इतिहास के अवधारणा में भी, जब से यह किताब लिखी गई है, बहुत कुछ बदला है। तो ऐसी स्थिति में 'मध्य एशिया का इतिहास' का ऐतिहासिक महत्व है। इसी तरह 'अकबर' जब उन्होंने लिखा तो वह कोई शोध ग्रंथ नहीं था लेकिन 'अकबर' में उन्होंने जिस बात को चिन्हित किया वह यह था कि समाज में हमेशा ही सेन्ट्रीपिटल अभिकेन्द्री बल और अपकेन्द्री बल दोनों काम करती है। अगर राष्ट्र की ताकत को उस समय बढ़ाने वाली ताकत थी तो वो अकबर की थी। महाराणा प्रताप की ताकत उस समय जो केन्द्रीकरण की प्रक्रिया चल रही थी उसको क्षरण करने वाली और नुकसान पहुँचाने वाली ताकत थी। इसलिए 'अकबर' की बड़ी आलोचना हुई। क्योंकि महाराणा प्रताप तो नायक हैं और महाराणा प्रताप को नीचे दिखाने की कोशिश करना और अकबर को बढ़ावा देना और अकबर को अशोक और गाँधी के बीच में सबसे बड़ा महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में रखना और साथ ही साथ उस देशकाल को भी चिन्हित करना जो उनके दरबार के नवरत्न थे, जिनके बारे में किस्से कहानियाँ तो बहुत है, लेकिन वास्तविकता के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं, उनको भी चिन्हित करना, ये सारा काम उन्होंने किया था। उन्होंने मौखिक इतिहास से लेकर साहित्य को इतिहास के स्रोत मानने से लेकर पुरातत्व तक हर चीज की बात की। लेकिन पुरातत्व की वरीयता को उन्होंने स्वीकार किया। उन्होंने माना कि इतिहास में पुरातत्व का विशेष महत्व है। उन्होंने बताने की कोशिश की कि गाँव के घूरे पर जो ठीकरे पड़े होते हैं हो सकता है, उनमें कोई संदेश छिपा हो। लेकिन कान होना चाहिए उनके संवाद को सुनने के लिए। और वह देश जिसमें कि जहाँ पर हड़प्पा की सभ्यता भुला दी गई थी, जहाँ पर स्तूपों से ईटे चोरी होती है उस देश में लोगों को पुरातत्व का महत्व बताकर कि गाँव-गाँव में इतिहास के स्रोत बिखरे पड़े हैं, उन्होंने इतिहास चेतना को जन-जन से जोड़ने का प्रयास किया। विख्यात पुरातत्ववेत्ता सांकलिया साहब जब मकान बना रहे थे तो अपने आस-पास से तमाम पुरातत्व के चिन्ह ढूँढ़ कर उन्होंने इकट्ठा किया और राहुल की बात को साबित किया। इसी तरह ऐतिहासिक गल्प (Historical Fiction) का जो महत्व होता है, किसी भी समष्टि की इतिहास चेतना में जो उसकी भूमिका होती है, यह राहुल ने चिन्हित किया। और फिर भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी जो इतिहास का महत्व होता है उस पर भी उन्होंने काम किया। इसलिए राहुल का इतिहासकार केवल मध्य एशिया का इतिहासकार नहीं है। राहुल के इतिहासकार को उस पूरी समग्रता में लेना होगा और तभी हम यह समझ पाएँगे कि हिन्दुस्तान को कैसे इतिहासकारों की जरूरत है।

'मध्य एशिया के इतिहास' के बारे में बहुत सारी बातें हो चुकी है। मैं केवल एक दो बातों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करुँगा। 'मध्य एशिया का इतिहास' में बहुत प्राचीनकाल के बारे में जो लिखा और कभी-कभी जिस पर लोगों का (जैसे भगवत शरण उपाध्याय का) एतराज था कि उसमें बहुत कुछ ऐसा जो प्राक्-ऐतिहासिक काल के बारे में लिखा गया वह उसमें अच्छी तरह से जुड़ता नहीं है। मैं साधिकार कुछ कह

नहीं सकता क्योंकि वह मेरा क्षेत्र भी नहीं है लेकिन मध्य एशिया में जब इस्लाम पहुँचता है, उसके बाद से वहाँ जो परिवर्तन होते हैं, उसके बारे में आप ध्यान दीजिए कि मध्य एशिया का वह क्षेत्र जहाँ किसी जमाने में चीन का प्रभुत्व बहुत था, रूस का था, फिर पर्शियन, तीन तरह के प्रभावों से लगातार टकराता रहा था, वह क्षेत्र संस्कृति के क्षेत्र में निश्चित ही रूस और चीन से ज्यादा प्रभावित पार्शियन संस्कृति से था और इसलिए इस्लामिक संस्कृति का भी था। लेकिन इस्लामिक संस्कृति की स्वयं जो अपनी समस्या थी जिसकी ओर बहुत विस्तार से बातचीत की गई है, मैं केवल यहाँ पर एक इशारा करना चाहूँगा।

मैकडोनल साहब ने इस्लाम के विधिशास्त्र और संस्कृति पर लिखते हुए यह बात कही थी कि अल्गजाली, जो '13वी' शताब्दी में हुआ इस्लाम न अच्छी तरह उसको समझ पाया न ही उससे उबर पाया। (Islam has neither outgrown Alghazali non has it very well under stood Alghazali)। इसके नाते जो एक तरह की स्थाणुता आई थी, जो अन्त: निरन्तर समृद्ध होता जाता है वह क्रम जो जैसे रुक गया था, उसके नाते मध्य एशिया में जो शुरू-शुरू में गतिमानता थी, क्योंकि मध्य एशिया में निरन्तर तरह-तरह की जनजातियों से लेकर तरह-तरह के लोगों का जो आवागमन होता रहता था, उससे जो समाज में लगातार ऊर्जा पैदा होती थी, लगातार द्वन्द्व होता था, गति पैदा होती थी वह सब काफी कुछ रुक सा गया था। और उस समाज में यह इतिहास जहाँ तक हमको ले जाता है कि जब रूसी प्रभुत्व में वह आया और बाद में जब सोवियत यूनियन बनता है वहाँ पर उसमें सोवियत यूनियन में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की जो कदर थी और जिसके नाते इस्लामी या पर्शियन संस्कृति को बनाए रखते हुए जो ऊर्जा का नया संचार हुआ मध्य एशिया में, उसकी ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए। क्योंकि अति प्राचीन काल में, जो प्रभाव पड़ा था भारत पर मध्य एशिया का और खासतौर से सोवियतीकरण के बाद मध्य एशिया में जो गति पैदा हुई थी, उसकी अर्थवत्ता पर ध्यान देना चाहिए। मैं आपका ध्यान रसूल हमजातोव की ओर ले आऊँ। 'मेरा दागिस्तान' जिसने पढ़ा है वह समझ सकता है। मैं समझता हूँ कि 'मेरा दागिस्तान' अकेले काफी है यह बताने के लिए कि सोवियत यूनियन में राष्ट्रीयताओं की वास्तव में क्या स्थिति बनी थी। लाख-दो लाख जिस भाषा को बोलते हों, उस भाषा में हमजातोव जैसा रचयिता पैदा होता है। उस विधा के बारे में कुछ नहीं कह सकते कि वह कविता क्या है। लेकिन जो लिखा गया है, मै नहीं जानता कि किसी और भाषा में लिखा गया होगा।

वह जो मध्य एशिया में नई ऊर्जा पैदा हुई थी वह मध्य एशिया को नए सिरे से भारत के लिए प्रासंगिक बनाती है और 'मध्य एशिया की पुन: खोज', जो आज का विषय है, उस विषय को चिन्हित करती है। और फिर जब सोवियत यूनियन का अन्त होता है और वहाँ पर फिर पुराने तरह के गणतन्त्र बनने की कोशिश होती है और सोवियतीकरण के जगह पर इस्लामीकरण फिर शुरू होता है, वहाँ पर तो वहाँ पर क्या दिक्कते आती है इस पर आप लोगों ने जरूर रोशनी डाली है। वो हमारे लिए आज बहुत ज्यादा जरूरी भी है क्योंकि आर्थिक दृष्टि से भी और जो पेट्रोडालर की दृष्टि से भी है, उसकी जो ताकत बढ़ रही है, उसके नाते और जो भूमंडलीकरण है या जो नव-उपनिवेशीकरण है, उसके सन्दर्भ में जिसकी तरफ आपने बात उठाई थी और जो आगे बढ़ नहीं पाई थी, जिसके नाते मध्य एशिया फिर जैसे महत्वपूर्ण हुआ है।

सेवियत यूनियन से हमारे जब संबंध अच्छे हुए थे, तो सोवियत यूनियन चूँकि अपने में राज्य के स्तर पर एक इकाई थी लेकिन वह तरह-तरह के सोवियतों का समूह था लेकिन भारतीय विदेश नीति, जिसकी इतनी प्रशंसा होती है, मैं उस विषय में जाना नहीं चाहता– यदि जाऊँ तो मै केवल यह कहना चाहूँगा कि किस तरह से एक आयामी विदेश-नीति बना करती थी। किसी राष्ट्र से जब हमारा रिश्ता होता था, इंग्लैंड से यदि रिश्ता है तो वो लंदन से रिश्ता, वह स्कॉटलैंड और वेल्स से हमारा कोई रिश्ता नहीं है। जब हमारा फ्रांस से रिश्ता है तो ब्रितानी से हमारा कोई रिश्ता नहीं है। यानी हम जानते भी नहीं कि वहाँ अलग से कोई सांस्कृतिक इकाई है। उसी तरह सोवियत यूनियन से जब हमारा रिश्ता था। खैर बदले हुए हालात में हमारी मजबूरी है कि हम ताशकंद से भी रिश्ता

कायम करें और मध्य एशिया के जो अन्य राज्य हैं उनसे भी रिश्ता कायम करें। तो मैं यह समझता हूँ कि फिर हम राहुल के उसी इतिहास दृष्टि से सबक ले सकते है जिसमें विशेष और सामान्य का सामंजस्य है। इतिहास का विषय मानव समाज है। लेकिन मानव समाज जितने राष्ट्रों में, जितनी राष्ट्रीयताओं में भाषाओं के स्तर पर या जितने स्तरों पर बटा होता हैं, वह जो विशिष्ट इकाइयाँ होती है, वह भी इतिहास का विषय होती हैं। इसलिए जो महत्तम समापवर्तक (Highest common denominator) और जो लघुत्तम समापवर्तक (Lowest common denominator) होते हैं, उनकी ओर भी इतिहास ध्यान देता है। तो मैं केवल यह कहना चाहूँगा, और, आपको याद दिलाना चाहूँगा कि भगवतशरण ने जब राहुल की तुलना करते हुए कहा था कि संतोनियो से जिसने कि इजिप्टोलॉज (ईजिप्ट विद्याशास्त्र) का रास्ता खोल दिया और जो हिरोक्लिप्स थे मिश्र के सभ्यता के जिसको उसने पढ़ निकाला या प्रिसेंप जिन्होंने अशोक को हमारे फिर से करीब ला दिया जो विस्मृत हो चुका था, उससे तूलना करते हुए जब मध्य एशिया के इतिहास की समीक्षा लिखी थी भगवतशरण उपाध्याय ने – और आप जानते है कि वे इसे साधिकार लिख सकते थे क्योंकि भारतीय इतिहासकारों में उनकी पहुँच कितनी थी यहाँ बैठे हुए लोग जानते है– तब उन्होंने कहा, मैं एक वाक्य की ओर आपका ध्यान आकर्षित करूँ। वे लिखते है "...where successim of tribal settlements struggled and succumbed to create and recreate the colourful pattern of composite culture. (जहाँ क्रमिक जनजातीय बस्तियाँ संघर्ष की ओर मिश्रित संस्कृत के रंगीन ढांचे के श्रृजन व पुनर्श्रृजन हेतु विलीन हुईं।) जो यह बना था मध्य एशिया में और अपने देश में प्राय: इन्ही शब्दों में बात होती है। बिना इसके मर्म को समझे हुए कि इसका मतलब क्या है। क्योंकि इसमें जो श्रृजन और पुनर्श्रृजन की प्रकृया जो होती है वह भारत में कैसे हुई है, इसको बिना ठीक से समझे हुए, कभी-कभी हम 'गंगा-जमुनी संस्कृति' के शब्दों में कहना शुरू कर देते है। बिना इस बात पर गौर किए हुए कि जब हम 'गंगा-जमुनी संस्कृति' की बात कर रहे होते है तो गंगा का जो विशेष महत्व है और जमुना जो इसके मातहत है, इस बात को ध्यान नहीं देते। हिन्दुस्तान में कौन मुसलमान यह मानेगा कि वह जमुना की तरह रहेगा, गंगा की तरह नहीं रहेगा और उस संस्कृति का हम नाम दे देते है-गंगा-जमुनी संस्कृति। और सबसे प्रचलित यही बात है। यह श्रृजन और पुनर्श्रृजन वाली प्रकृया नहीं है। यहाँ जो अलग-अलग संस्कृतियाँ है, उसकी विविधता और अस्मिता को पूरी तरह स्वीकार करने वाली बात नहीं है क्योंकि मध्य एशिया में शायद हुई थी।

आखिर में उनका एक वाक्य है इसी किताब की समीक्षा को लेकर- It does not only make comprehension of Indian history easier but also unravel many a knot. No language either in the East or West has produceed such a magnum opus. (यह न सिर्फ भारतीय इतिहास को समझना आसान बनाता है अपितु अनेकों गाँठों को भी खोलता है। पूर्व या पश्चिम की किसी भी भाषा ने ऐसी महान कृति को जन्म नहीं दिया है।) यानी केवल इसलिए नहीं कि वह 1200 पेज की किताब है, केवल इसलिए नहीं कि तब तक के सारे शोध जो उपलब्ध थे उसका इतिहास में सबसे अच्छा संग्रह है, उसकी ओर इशारा किया है, बल्कि इसलिए कि उसमें एक खास तरह की इतिहास दृष्टि भी है।

राहुल के इतिहास में जो परिप्रेक्ष्य है वह जरूरत पड़ने पर ब्रमाण्ड का है, जरूरत पड़ने पर विश्व का है, जरूरत पड़ने पर सम्पूर्ण भारत का है और मध्य एशिया का विशेष संबंध था भारत से जैसा कि भगवतशरण उपाध्याय ने भी कहा है कि पूर्व के भग्वानशेषों पर खड़े हुए बगैर हिन्दुस्तान को नहीं समझा जा सकता है। ऐसे हालात में हिन्दुस्तान को समझने के लिए, मानव सभ्यता को समझने के लिए और केवल समझने के लिए ही नहीं, उसे बदलने के लिए राहुल को जानना जरूरी है और राहुल के 'मध्य-एशिया का इतिहास' को जानना जरूरी है लेकिन साथ ही साथ उनके 'वोल्गा से गंगा' को भी जानना जरूरी है, और 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो' को भी जानना जरूरी है। ■

(प्रस्तुत आलेख जाने-माने इतिहासकार प्रो. लाल बहादुर वर्मा द्वारा राहुलजी के जन्मदिवस पर वर्ष 1998 में 'मध्य एशिया की पुन: खोज : भारत में आधुनिक मध्य एशियाई अध्ययन के संस्थापक महापंडित राहुल सांकृत्यायन को श्रद्धांजलि' विषय पर दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में पढ़ा गया।)*

राहुलजी और बौद्ध धर्म, दर्शन एवं संस्कृति

■ डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

महापंडित राहुल सांकृत्यायन देश की अप्रतिम विभूति हैं। उनकी चिंतन प्रतिभा के अनेकानेक आयाम हैं। यह सभी जानते हैं कि वह एक महान पर्यटक, साहित्यकार, इतिहासकार, दार्शनिक ही नहीं अपितु स्वतंत्रता सेनानी और महायोद्धा भी थे। बौद्ध दर्शन के तो वे मान्य विद्वान और व्याख्याता थे तथा त्रिपिटकाचार्य की उपाधि से विभूषित थे। बौद्ध धर्म से वे इतना प्रभावित हुए कि स्वयं बौद्ध बने। राहुलजी सतत यायावर थे। उनके इस यायावर जीवन के मूल में अध्ययन, शोध और भारतीय संस्कृति की पहचान ही मूल था। राहुलजी स्वयं लिखते हैं, ''प्राय: सैंतीस वर्षों से दुनिया के भिन्न-भिन्न भू-भागों में अपने पूर्वजों के पथ-चिन्हों को ढूँढ़ने का मेरा प्रयास रहा है'' [1]

यह प्रस्तावना 1952 में लिखी गयी। अर्थात् राहुलजी अपने 1915 के आगे के जीवन के विषय में कह रहे हैं। जनवरी 1915 में राहुलजी 'आर्य मुसाफिर विद्यालय' आगरा पहुँचे थे। यह प्रथम महायुद्ध का भी समय था। आगरा प्रवास के दौरान राहुलजी आर्य समाज की तरफ झुके तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए उनके हृदय में प्रबल विचार उठने लगे।

राहुलजी लिखते हैं, ''राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए मुझे इतनी बेकरारी थी, किन्तु उस वक्त राष्ट्रीयता के बारे में मेरी क्या धारणा थी? राष्ट्रीयता और धर्म को मैं उस वक्त अलग नहीं समझता था। धर्म से मेरा मतलब आर्य समाज और स्वामी दयानन्द के मान्य वैदिक धर्म से था। बाकी धर्मों – ईसाई, इस्लाम, यहूदी, बौद्ध ही नहीं हिन्दू धर्म के अनेक संप्रदायों को भी मैं झूठे धर्म तथा वेद और विज्ञान के प्रकाश में शीघ्र ही लुप्त हो जाने वाले धर्म समझता था।''[2] राहुलजी आर्य समाज के प्रचारक बने। 1916 ई. में वे आर्य समाज के गढ़ लाहौर गए। वहाँ उन्होंने अपनी संस्कृत की पढ़ाई जारी रखी। आर्य समाज के प्रचारक के रूप में राहुलजी ने अनेक जनपदों की यात्रा की और इसी दौरान वे लखनऊ पहुँचे। उन्हें मालूम हुआ कि वहाँ कोई बौद्ध विहार है जिसमें एक बौद्ध भिक्षु रहते हैं। राहुलजी लिखते हैं, ''बौद्ध भिक्षुओं जैसी धर्म प्रचार की लगन को बहुत बार व्याख्यानों में मैं सुन चुका था। नालन्दा जैसे धर्म प्रचारक पैदा करने के केंद्र होने चाहिए, इस विचार का अंकुर बड़ी मजबूती के साथ हमारे हृदयों में उठ चुका था, इसलिए जब बौद्ध भिक्षु का रहना मालूम हुआ, तो एक दिन शाम को मैं बिहार में पहुँचा। अंधेरा हो चुका था, बाहरी रोशनी काफी नहीं थी या स्मृति का ही दोष है, मंदिर और उस समय के स्वामी बोधानन्द के आकार-प्रकार का कुछ ख्याल नहीं। उनसे मुख्यतौर पर ईश्वर, वेद आदि विषयों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य, त्रिपिटक आदि के बारे में बातचीत हुयी। ईश्वर का उन्होंने साफ शब्दों में निषेध नहीं किया। शायद वह पुरानी विचारधारा पर धीरे-धीरे प्रहार करने के पक्षपाती थे। बौद्ध-साहित्य में बंगला में छपी बुद्ध पुस्तकों तथा वंगीय बौद्धों की मासिक-पत्रिका 'जगज्जोति' का पता दिया। पाली त्रिपिटक के पते के बारे में अनागरिक धर्मपाल से लिखा-पढ़ी करने के लिए कहा। उस संक्षिप्त साक्षात्कार के वक्त यह नहीं पता लगता था, कि मेरे जीवन के विकास में इस साक्षात्कार द्वारा ज्ञात बातें खास पार्ट अदा करने वाली है।'' [3]

राहुलजी को अनागारिक धर्मपाल ने त्रिपिटिक-ग्रंथों के प्राप्ति स्थान के पते दिए। राहुलजी संस्कृत व्याकरण और साहित्य पढ़ चुके थे। सन् बीस-बाईस तक काशी, आगरा, अयोध्या, लाहौर और दक्षिण भारत में विभिन्न पंडितों से वैष्णव दर्शन, वेदान्त, मीमांसा, प्राचीन न्याय आदि पढ़ चुके थे। राहुलजी ने अनागरिक धर्मपाल द्वारा दिए गए पते से बर्मी लिपि में छपे पाली ग्रंथ मँगा लिए। उन्होंने अंग्रेजी अनुवाद सहित नागरी अक्षरों में छपा

'कच्चान व्याकरण' भी मँगाया जिससे सिंहली, बर्मी और स्यामी लिपियाँ सीखना आसान हो गया। उसके बाद राहुलजी ने बौद्ध तीर्थों की यात्रा की।

1921 से 1927 का समय उनका राजनीति में बीता। 1927 में वे कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल हुए। राहुल जी को इस अधिवेशन और उसके बाद की घटनाओं से निराशा ही हाथ लगी। वे लिखते हैं, ''कांग्रेस के सामने कोई नया कार्यक्रम न था। मेरे साम्यवादी विचार 'बाईसवीं सदी' लिखकर रख रखने ही तक सीमित थे, और उनके प्रचार के लिए साथी और अनुकूल वातावरण नहीं था। उधर बौद्ध धर्म के विशेष अध्ययन की मेरी इच्छा, जो लद्दाख यात्रा से जग उठी थी, अब मुझ पर भारी जोर दे रही थी। 22 फरवरी को सारनाथ जाने पर मैंने अपना विचार भिक्षु श्रीनिवासजी से कहा, उन्होंने मेरे विचारों का समर्थन करते हुए कहा - इस वक्त अच्छा अवसर भी है। लंका का विद्यालंकार विहार एक संस्कृत-अध्यापक की खोज में है। आप वहाँ चले जाएँ बड़ी अनुकूलता रहेगी।'' [4]

सन् 1928-29 में राहुलजी श्रीलंका के विद्यालंकार परिवेण में थे। वे वहाँ पालि में उपलब्ध त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं को मूल रूप में पढ़ने के लिए गए थे। त्रिपिटक लगभग पाँच-पाँच सौ पृष्ठ के पैंतालीस ग्रंथों का नाम है। हर ग्रंथ पर उनके भाष्य या अर्थकथाएँ हैं। भदन्त आनन्द कौसंल्यायन जोकि उन दिनों श्रीलंका में राहुलजी के साथ ही थे, के अनुसार, ''आठ-नौ महीनों में उन्होंने सारा त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं को, जो तीन महाभारत के बराबर है, छान मारा।''

भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी आगे लिखते हैं, ''त्रिपिटक और उनकी अट्ठकथाओं का अध्ययन पूरा हुआ, तो राहुलजी ने अपनी कॉपियों में लिखे इन नोटों के आधार पर 'बुद्धचर्या' जैसा अद्भुत ग्रंथ तैयार कर डाला; प्राचीन भारतीय इतिहास की उपादान-सामग्री की दृष्टि से बेजोड़। किसी भी भारतीय या विदेशी भाषा में उसकी टक्कर की दूसरी पुस्तक है ही नहीं।'' [5]

श्रीलंका में रहते हुए ही राहुलजी ने तिब्बत जाना तै कर लिया था। राहुलजी लिखते हैं, ''मैंने अब तै कर लिया था, कि लंका से एक बार तिब्बत जाना जरूरी है, क्योंकि वहाँ गए बिना बौद्ध दर्शन की शिक्षा और भारत के बौद्ध धर्म के इतिहास की जिज्ञासा पूरी नहीं हो सकती हैं।'' [6]

इसी संदर्भ में राहुलजी आगे लिखा, ''9 दिसम्बर (1928) को मैं भारत के लिए रवाना हुआ। असल में यह भारत के लिए नहीं, तिब्बत के लिए रवाना होता था। ... मैं जिस वक्त लंका आया था, उस वक्त पाली को सिर्फ छूआ-भर था, संस्कृत को मैंने अच्छी तरह पढ़ा था, लेकिन पुरातत्व, पुरालिपि और इतिहास की मौलिक सामग्री का मेरा अध्ययन नहीं के बराबर था। अब इन चीजों का मुझे काफी ज्ञान था। मैंने 19 महीनों में सिर्फ पाली त्रिपिटक का ही अध्ययन नहीं किया, बल्कि भारत, लंका की पुरातत्व की रिपोर्टों, हिन्दुस्तान और विदेशों की इतिहास - संबंधी अनुसंधान-पत्रिकाओं का विधिवत् पारायण किया था। भोट (तिब्बत) भाषा का किताबों से थोड़ा सा अध्ययन किया था, और भारतीय सर्वे विभाग के नक्शों को देखकर यह भी तय कर लिया था, कि नेपाल के रास्ते ही मैं तिब्बत के भीतर घुस सकता हूँ। लेकिन नेपाल शिवरात्रि के समय ही जाया जा सकता था, इसलिए मैंने इन तीन महीनों को भारत के बौद्ध ऐतिहासिक स्थानों को देखने में लगाने का निश्चय किया।'' [7]

विद्यालंकार में राहुलजी को त्रिपिटकाचार्य की उपाधि प्रदान की गयी। प्रो. लक्ष्मीनारायण तिवारी के अनुसार, ''तिब्बत जाने से पूर्व आचार्य वसुबन्धु के अभिधर्म कोश की खण्डित कारिकाओं को फ्रेंच विद्वान पूँसे के इसके भाष्यानुवाद तथा इस पर प्राप्त यशोमित्र की स्फूटार्था नामक टीका की सहायता से पूर्ण करके इस पर 'नालान्दिका' नामक मौलिक संस्कृत टीका वे लिख चुके थे, जिसे आचार्य नरेन्द्र देव ने काशी विद्यापीठ से प्रकाशित करने की स्वीकृति दी। इसके प्रकाशित होने पर उस समय के प्रसिद्ध विद्वान सिल्वा लेवी ने पत्र द्वारा अपनी यह सहमति व्यक्त की थी :-

''सबसे पहले मैं आपकी सुन्दर, सुबोध और परिष्कृत लेखन शैली के लिए आपका अभिनन्दन करना

चाहता हूँ। आपके लेखन को पुन: पढ़ते समय मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अश्वघोष, नागार्जुन और वसुबन्धु ने जिसका अत्यंत प्रभावशाली रूप में उपयोग किया, उस संस्कृत भाषा का आपकी तरह सुन्दर लेखन कम से कम पिछले सौ सालों में - नेपाल के पंडित अमृतानन्द के बाद अन्य किसी ने किया, प्रतीत नहीं होता। आपके अभिधर्मकोश ग्रंथ से संस्कृत भाषा पर आपका प्रभुत्व स्पष्ट है। इस ग्रंथ के लिए आपने जो प्रस्तावना लिखी है, उससे आपके प्रगाढ़ अध्ययन और अनेक भाषाओं के ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है।'' [8]

राहुलजी ने 1929-30ई. में तिब्बत की प्रथम यात्रा की। उसके बाद राहुलजी ने तिब्बत की तीन और यात्राएँ कीं। इन यात्राओं के दौरान तिब्बत में जो ग्रंथ राशि राहुलजी के हाथ लगी उसका विवरण समय-समय पर 'बिहार-उड़ीसा रिसर्च जर्नल' के अंकों में छपा। इन विवरणों के अनुसार राहुलजी तिब्बत से कंजूर, तंजूर के चार सेट ले आए। इसमें से एक सेट लंका के परिवेण विहार को, दूसरा रंगून विश्वविद्यालय को, तीसरा सेट (केवल कंजूर) कलकत्ता विश्वविद्यालय को तथा चौथा सेट बिहार रिसर्च सोसायटी को प्रदान किया। इसके साथ-साथ वे तिब्बती पाण्डुलिपियाँ भी ले आए। बिहार रिसर्च सोसाइटी द्वारा छापे गए कैटेलॉग के अनुसार इनकी संख्या 1619 है। [9]

जगदीश्वर पाण्डेय के अनुसार, ''बौद्ध-संस्कृत-साहित्य के लगभग 80 अनमोल ग्रंथों के फिल्म निगेटिव भी उन्होंने बहुत कष्ट सहकर तिब्बत लाया। बाद में काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान द्वारा इन निगेटिव को ऋण लेकर तीस ग्रंथों को प्रकाशित किया गया।

राहुलजी ने पटना म्यूजियम को, लगभग 150 थंका (तिब्बती चित्रपट), कुछ ताल पत्र पर लिखी पाण्डुलिपियाँ तथा अन्य सामग्रियाँ दीं जो वहाँ रखी गयी हैं।'' [10]

उन चार यात्राओं के क्रम में राहुलजी को बौद्ध संस्कृत साहित्य के 380 ग्रंथ देखने को मिले, जिनकी सूची उन्होंने बिहार रिसर्च सोसायटी की शोध पत्रिका में तीन खंडों में प्रकाशित की। इनमें से वे 80 ग्रंथों के ही फोटों लेने में समर्थ हो सके। इन ग्रंथों के नाम तथा निगेटिव संख्या के साथ सूची दी जा रही है। [11]

बिहार रिसर्च सोसायटी में संगृहीत राहुल सांकृत्यायन द्वारा पाण्डुलिपियों के लिए गए छायाचित्र

क्रम सं.	निगेटिवों के नाम	निगेटिवों की संख्या
1.	भूतडामरतन्त्र	22
2.	छग लो. र्व्वम	6
3.	कालचक्रटीका	11
4.	कालचक्रटीका	10
5.	क्रियासमुच्चय	16
6.	हेतुविन्दु टीका	30
7. ए-	अश्वघोष	2
7.	हेवज्र साधन	57
8.	टाइटिल (अज्ञात)	8
9.	शुद्धाचार	10
10.	विनयसूत्र टीका	5
11.	विनयसूत्र	16
12.	अभिधर्म समुच्चय	4
13.	न्यायविन्दु अनुटीका	24
14.	अभिधर्म समुच्चय टीका	11
15.ए-	अभिधर्म प्रदीप	16
15.	तर्करहस्य	10
16.	वही	2
17.	अर्थविनिश्चय	17
18.	वही	1
19.	सुभाषित रत्नम्	6
20.	पञ्चक्रमादि	43
21.	चक्रसंवर	1
22.	दर्शन एवं चक्रसंवर	3
23.	दर्शन	2
24.	प्रातिमोक्ष	4
25.	ज्ञानसिद्धि मध्यान्त विभाग	3
26.	वही	1
27.	षष्टिकला मध्यान्त न्यायसिद्धि	1
28.	वही	1

29.	वार्तिकालंकार	82
30.	सिंहल	6
31.	हेरूकसाधन	5
32.	हेरूकसाधन	1
33.	धम्मपद	4
34.	ज्ञानश्रीमित्रनिबंधावलि	52
35.	बोधिसत्वभूमि	30
36.	जे. सूत्र	9
37.	विशिंकोवृत्ति	6
38.	न्यायसिद्धि	3
39.	हेतुबिन्दु अनुटीका	8
40.	नीर	4
41.	उपसम्पदाज्ञप्ति	4
42.	हेवज्रटिप्पणी	4
43.	हेवज्रटिका	6
44.	अमरकोश	4
45.	अमरकोश टीका	4
46.	वही	4
47.	वज्रसूची	4
48.	पिक्चर एण्ड मैनुस्क्रिप्ट्स	57
49.	श्रामणेरकारिकाटीका	19
50.	महायानोत्तरतन्त्र	5
51.	महायानोत्तरतन्त्रटीका	8
52.	प्रमाणवार्तिकटीका	58
53.	प्रमाणवार्तिकटीका	3
54.	प्रमाणवार्तिक प्रज्ञालङ्कार	2
55.	प्रज्ञालङ्कार सर्वज्ञसिद्धि	1
56.	सर्वज्ञसिद्धि	2
57.	सर्वज्ञसिद्धि सहोपलंभ	2
58.	छन्दोरत्नम्	3
59.	प्रातिमोक्षसूत्र टीका	10
60.	महाकालतन्त्र एवं टीका	16
61.	महाकालचक्र	15
62.	विनयसूत्रवृत्ति	10
63.	विनयकारिका	4
64.	कालचक्र	24
65.	सारतमा	42
66.	योगाचारभूमि	44
67.	श्रावकभूमि	31
68.	हेवज्रटीका एवं हेवक्त्रैकादश	51
69.	भिक्षु प्रकीर्णक	71
70.	भिक्षु प्रकीर्णक	11
71.	रत्नकीर्ति निबन्धावली	22
72.	अर्थविधि (24-1-4)	28
73.	वाद रहस्य (वी.)	26
74.	वाद रहस्य (डी.)	10
75.	अभिधर्मकोशभाष्य	63
76.	तमिल	11
77.	तमिल	27
78.	तमिल	25
79.	सिंहल	13
80.	सिंहल	24
81.	चान्द्रव्याकरणटीका	50

राहुलजी की तिब्बत की इन यात्राओं का मकसद वहाँ के साहित्य का अध्ययन तथा उससे भारतीय एवं बौद्ध धर्म संबंधी ऐतिहासिक तथा धार्मिक सामग्री एकत्रित करना था। राहुलजी को इन यात्राओं से आचार्य धर्मकीर्ति का 'प्रमाण-वार्तिक' अपने मूल संस्कृत रूप में ही मिल गया। 'प्रमाण-वार्तिक' बौद्ध न्याय की रीढ़ है और समस्त भारतीय दर्शनों में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। 'प्रमाण-वार्तिक' को समझने के लिए न्याय के ग्रंथों का एक विशाल परिवार है। राहुलजी ने अपने प्रयासों से 'प्रमाण-वार्तिक' परिवार के बहुत से ग्रंथों को खोज निकाला। 'प्रमाण-वार्तिक' के अन्वेषण के लिए उन्हें अक्षय कीर्ति मिली। राहुलजी द्वारा लिखित, अनुदित और संपादित बौद्ध साहित्य की सूची [12] नीचे दी जा रही है।

1. अधिधर्मकोश : आचार्य वसुबन्धु प्रणीत- वाराणसी 1931।
2. बुद्धचर्या -- वाराणसी, 1931, द्वितीय संस्करण -- 1952।

3. धम्मपद, मूल पालि, संस्कृत-छाया और हिन्दी अनुवाद सहित। प्रथम संस्करण, सारनाथ, 1933 । द्वितीय संस्करण, लखनऊ, 1957 ।
4. विनयपिटक -- (1) भिक्खु-पातिमोक्ख, (2) भिक्खुनी पातिमोक्ख, (3) महावग्ग, (4) चुल्लवग्ग, सारनाथ 1935 ।
5. धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक - सम्पादित।
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol.XXIV, 1938. Part I-II.
6. मातृचेटकृत अध्यर्द्धशतक - सम्पादित श्री काशी प्रसाद जायसवाल के साथ,
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol XXIII, Part IV (1937)
7. नागार्जुनकृत विग्रहव्यावर्तनी - सम्पादित श्री काशी प्रसाद जायसवाल के साथ,
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXIII.
8. आचार्य धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक, आचार्य मनोरथनन्दीकृत वृत्तिसहित -- सम्पादित, पटना 1930 ।
9. आचार्य धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक (स्वार्थानुमानपरिच्छेद) स्वोपज्ञवृत्तिसहित तथा कर्णगोमीवृत्तिसहित-- सम्पूरित और सम्पादित। इलाहाबाद, 1944 ।
10. प्रज्ञाकरगुप्तकृत प्रमाणवार्तिकभाष्य - सम्पादित। पटना, 1953 ।
11. तिब्बत में बौद्ध धर्म - इलाहाबाद, 1944 ।
12. बौद्ध-दर्शन-प्रथम संस्करण, इलाहाबाद 1944, द्वितीय मुद्रण 1948 ।
13. बौद्ध-संस्कृति -- कलकत्ता 1953 ।
14. दीर्घागमस्य सूत्रद्वयम् (महावदान- महापरिनिर्वाण सूत्रे) भिक्षु बुद्धयशसश्चीन भाषान्तरतः ग्ङग्मोलम् पण्डितेन साहाय्येन श्री राहुल सांकृत्यायनेन पुनः संस्कृतेऽनूदितम्। लखनऊ, 1957 ।
15. पुरातत्व निबन्धावली । प्रथम संस्करण, इलाहाबाद 1935, द्वितीय 1957 ।
16. Search for Sanskrit Manuscript in Tibet Vol. XXI. Part I, pp. 8-10, Vol. XXIII, Part I, pp-33-52 and Vol. XXIV, Part IV, pp-1-27. "Journal of the Bihar and Orissa Research Society."
17. दीघनिकाय । हिन्दी अनुवाद । सारनाथ।
18. मज्झिमनिकाय । " " सारनाथ।
19. वसुबन्धुकृत विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि । (चीनी से संस्कृत)
Journal of the Bihar and Orissa Reseach Society .
20. आचार्यधर्मकीर्ते : वादन्यायः सटीकः । सम्पादित। Journal of the Bihar and Orissa Research Society,
21. खुद्दकपाट (पालि) सम्पादित ।
22. सरहपादकृत दोहाकोश - तिब्बत और हिन्दी छाया। पटना 1957 ।
23. महामानव बुद्ध । लखनऊ, 1956 ।
24. पालि साहित्य का इतिहास । वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 ।

राहुलजी ने भारतीय विद्वानों को इस संग्रह के संपादन में सुविधा के लिए तिब्बती बाल शिक्षा, पाठावली, तिब्बती व्याकरण, तिब्बती-हिन्दी शब्दकोश, तिब्बती-संस्कृत-कोश आदि की भी रचना की जिनकी सूची नीचे दी जा रही है।

1. तिब्बती - हिन्दी कोश
भाग -1 (प्रकाशित) 1972 (इसका लेखन 1964 में हुआ तथा प्रकाशन 1974 में साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा हुआ)
भाग -2 (अप्रकाशित)
2. तिब्बती बाल शिक्षा, 1933 प्रकाशन - महाबोधि सभा - सारनाथ।
3. पाठावलि - भाग -1, भाग 2, भाग 3, 1933 प्रकाशन-यंगमन एसोसिएशन, लद्दाख।
4. तिब्बती व्याकरण, 1933, प्रकाशन - महाबोधि सभा सारनाथ।

राहुलजी द्वारा लिखित बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद पर एक आलेख संस्कृत में उसके हिन्दी अनुवाद के साथ 'बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद' पुस्तक में छपा है।[13]

भारतवर्ष महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा भारतीय संस्कृति की पहचान के लिए उनके द्वारा किए गए अध्ययन व शोध कार्यों तथा बौद्धधर्म, दर्शन और संस्कृति के अवदानों के लिए सदा ऋणि रहेगा।

संदर्भ

1. *बौद्ध संस्कृति, (1952) राहुल सांकृत्यायन, आधुनिक पुस्तक भवन 30-31, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता।*
2. *राहुल वांङ्मय, (1994), अंक 1.1: जीवन यात्रा, पृष्ठ: 182-183, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली*
3. *वही, पृष्ठ - 194*
4. *वही , पृष्ठ -311*
5. *राहुल स्मृति , (1988) 'राहुलजी का बौद्ध- साहित्य और दार्शनिक चिंतन- भदन्त आनन्द कौसल्यायन', पृष्ठ : 295-296, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।*
6. *राहुल वांङ्मय (1994) अंक 1.2: जीवन यात्रा, पृष्ठ : 23, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।*
7. *वही, पृष्ठ : 26*
8. *बौद्ध दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य : महापंडित राहुल सांकृत्यायन का योगदान, (1997) 'संस्कृत वांङ्मय के अभिवर्धन में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का योगदान' - प्रो. लक्ष्मीनारायण तिवारी, पृष्ठ : 105-106, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी।*

9- *The Catalogue of the Tibetan Texts in the Bihar Research Society. Patna Volume-I Edited by Prof. Aniruddha Jha. (1965), The Bihar, Research Society , Patna.*

10. *बौद्ध दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य: महापंडित राहुल सांकृत्यायन का योगदान, (1997), 'बौद्ध संस्कृत साहित्य : महापंडित राहुल सांकृत्यायन का योगदान' - डॉ. जगदीश्वर पाण्डेय, पृष्ठ : 121, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी*
11. *वही, पृष्ठ : 133-135*
12. *पालि साहित्य का इतिहास (1993), 'बौद्ध साहित्य को राहुलजी की देन' - कमला सांकृत्यायन, पृष्ठ : 11-13, वाणी प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली*
13. *बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद, (1985) बुद्धमार्क्सयोर्वादसाम्यम्-महापंडित राहुल संकृत्यायन, पृष्ठ : 1-8 तथा बुद्ध और मार्क्स की समानताएँ - महापंडित राहुल सांकृत्यायन, अनुवादक- श्री राधेश्यामसर द्विवेदी, पृष्ठ : 9-16, बौद्ध दर्शन विभाग, श्रमणविद्या संकाय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।* ■

गज़ल

■ राघवेन्द्र तिवारी

इस शहर का आबोदाना माईबाप ।
नाम मेरे पाई-आना माईबाप ।।

पाँव के छाले कि फोड़े पीठ के
हैं बहुत ही कातिलाना माईबाप ।।

हम सुअर से बेहतरी की जंग में
झाड़ते आये पखाना माईबाप ।।

हमें क्या है कौन प्लेटो, अरस्तू
या कबीरा-खानखाना माईबाप ।।

अंदरूनी लिबासों में सभी नंगे
मर्द हों या हों जनाना माईबाप ।।

श्री आत्माराम कनिराम राठोड मराठी के जाने-माने लेखक, कवि और सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। उनका जन्म एक बंजारा परिवार में हुआ तथा 'ताँडा' में रहकर पले-बढ़े। इनकी कई रचनाएँ पुरस्कृत हुई हैं। 'ताँडा' नामक आत्मकथा का अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ है। 'अज्ञानकोष' आत्माराम कनिराम राठोड की उपहास-गर्भ रचनाओं का संग्रह है। ये कहानियाँ कब हमें हँसा दें, कब सोच में डाल दें या रुला दें, कहा नहीं जा सकता।

अज्ञानकोष

■ आत्माराम कनिराम राठोड

18. पक्षियों की लोकशाही

अब ऐसे आश्चर्य केवल इंसानी समाज में ही होते हों शायद ऐसा नहीं है। पशु-पक्षियों, जलचरों में भी शायद ऐसा होता है। इसीलिए तो कबीर जी कहते हैं:-

एक अचम्भा हमने सुना, कुआँ में लागी आग ।
पानी था सो जल गया, मछली खेले फाग ।।

अब ऐसा आश्चर्य कबीर ने कहाँ सुना होगा। सुना होगा तो उस पर विश्वास भी किया होगा। परन्तु आग लगा हुआ कुआँ, जला हुआ पूरा पानी और उसमें से बची-खुची फाग खेलती मछलियाँ, इन सब पर उन्होंने भला अपना विश्वास कैसे रखा होगा। रखा भी तो वह अंधविश्वास अपनी कविता (दोहा) के माध्यम से हमें क्यों सुनाया?

खैर, यह सवाल जाने दो

☆ ☆ ☆

एक बार एक कौए को पक्षियों का सम्मेलन करने का विचार आया। उसने अपनी कल्पना दोस्तों को बताई।

सभी को यह विचार बहुत अच्छा लगा। बस फिर क्या, सम्मेलन बुलाने का निर्णय हो गया। सम्मेलन बुलाने की कल्पना कौए की थी इसलिए इस सम्मेलन का स्वागत अध्यक्ष उसी को चुना गया। चुना गया मतलब चुनाव द्वारा नियुक्ति हुई।

क्योंकि कबूतर, बगुला, मोर वगैरह सुन्दर जाति के पक्षियों ने कौए के स्वागत अध्यक्ष बनाए जाने का विरोध किया था अत: सम्मेलन में दो गुट हो गए और हर निर्णय मतदान से होने लगा। समाचार पत्रों को भी गुटबंदी होने से सम्मेलन की सनसनीखेज खबरें मिलने की उम्मीद बन गई।

सम्मेलन में अपने विचार रखते हुए कौए ने कहा –दोस्तो! मैं एक इंसानों की बस्ती के पास रहने वाला पक्षी हूँ, इसीलिए मुझे इंसान की संस्कृति की अच्छी जानकारी है। मैं यहाँ कुछ किताबें लाया हूँ। ये पुस्तकें किसी ग्रंथालय की नहीं हैं, अपितु भारत देश में विभिन्न विषयों पर पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें हैं। यदि सहज रूप से देखें तो सभी विषयों की इन सभी पुस्तकों में जो एक बात समान है, वह है- प्रतिज्ञा।

''हमको बताओ! हमको बताओ!!''- सभी पक्षियों ने चिल्लाकर कहा।

''बताता हूँ।''- कौए ने कहा, ''पहले मेरी बात सुन लो, मेरा कहा सुन लो। इस भारत के इंसानों ने गणतंत्र नामक प्रणाली अपनाई है और उनके लड़के, मास्टर रोज 'भारत मेरा देश है, सारे भारतीय मेरे भाई हैं', ऐसी प्रतिज्ञा करते रहते हैं।''

"हमको सुनाओ! हमको सुनाओ!!" पक्षियों ने चिल्लाकर कहा।

"सिर्फ देखकर-सुनकर काम चलनेवाला नहीं।"– कौए ने कहा, "दोस्तों! गणतन्त्र में आचरण का महत्व होता है। और तुम्हें क्या बताऊँ, उन्होंने इंसान को इंसान बनाया है। वह एक दूसरे को भाई-भाई समझते हैं। एकदम कश्मीर का आदमी कन्याकुमारी के आदमी को भाई बोलता है तो आसाम की बाई गुजरात की स्त्री को बहन समझती है। परन्तु एक घर में रहनेवाली दो स्त्रियों में पटती नहीं है। और देखो इतना सारा बदलाव आ गया है। यह चमत्कार गणतंत्र का है।" पर भाइयो और बहनो! आदमी की औकात ही कितनी है। हम लोगों की तरह वह उड़ नहीं सकता। अत: हमें पकड़ने के लिए उसने जाल बनाए तथा और भी कई उपाय किए। हम आकाश में उड़ सकते हैं। फिर भी हम आपस में झगड़ते रहते हैं। छि:! छि:!! यह अत्यन्त शर्म की बात है। भाइयो! अत: हमें गणतन्त्र स्वीकार करना चाहिए। इसी मुद्दे पर चर्चा के लिए मैंने इस सम्मेलन का आयोजन किया है। अब निर्णय आपके हाथ में है, आपको लेना है और वह भी बहुमत से लेना है। गणतंत्र में बहुमत का बहुत महत्व होता है।"

अपनी बात समाप्त कर कौआ बैठ गया। सभी पक्षियों ने 'गणतंत्र लाओ' का नारा लगाया। सभा में उपस्थित पत्रकारों में से एक ने जाकर कौए से पूछा– "कौआ साहब! आपके भाई-बन्धु नारे लगा रहे हैं, माँग कर रहे हैं और आप शान्त बैठे हैं। उन्हें चुप क्यों नहीं करवाते।"

कौआ शांत मुद्रा में बोला, "गणतंत्र की निशानी है जनता का चिल्लाना और उसका बढ़ते जाना। और पत्रकार साहब! जनता के चिल्लाने को ध्यान में न लेना गणतंत्र के यशस्वी नेता की पहली पहचान होती है।"

पत्रकार बेचारा बैठ गया।

कौए ने अपने पास ही बैठे एक पक्षी के कान में कहा, "देखो! यह पत्रकार गणतन्त्र के खराब पत्रकारों में से एक सच्चा पत्रकार है। जनता का चिल्लाना सुनकर नेताओं से सवाल करना और उसके किसी भी जवाब पर सिर हिलाना जो जानता है उसे गणतन्त्र में उत्तम और यशस्वी पत्रकारिता का पुरस्कार प्राप्त होता है।"

कौए ने क्या कहा यह पक्षी की समझ में नहीं आया।

नेताजी का बोलना और नजदीक के लोगों को भी समझ में न आना इसे ही गणतंत्र के आगमन का द्योतक माना जाता है। पहले भी कांग्रेस के अधिवेशन में महात्मा गाँधी और उनके दाहिने हाथ माने जाने वाले नेताजी सुभाष चन्द्र बोस एक दूसरे को समझे नहीं थे ऐसा कहते हैं।

कौए की सम्मेलन करने के पीछे छुपी महत्वाकांक्षा पूरी हुई। पक्षियों ने भारतीय इंसानी समाज की तरह की गणतंत्र प्रणाली स्वीकार करने का बहुमुखी निर्णय लिया। संविधान समिति की स्थापना हुई। उस समिति ने चुनाव की सिफारिश की। चुनाव की अधिसूचना जारी हुई। कौओं ने अपने पक्ष की घोषणा की। कौएतर पक्षियों ने भी अपने पक्ष की घोषणा की और गरुड़ को अपना नेता चुना। पक्षियों का पहला सार्वजनिक चुनाव बड़े जोर-शोर से हुआ। दोनों पक्ष अपने-अपने जीत का दावा कर रहे थे। परिणाम का दिन आया। गणना शुरू हुई। काँटे की टक्कर थी जो परिणामों से साबित हो रहा था। दोनों गुटों के नेता, कार्यकर्त्ता अपने-अपने कार्यालय में जमे हुए थे। अचानक कबूतर नया परिणाम लेकर आया। उसने पक्षी प्रवक्ता तोता के कान में बताया। तोते ने घोषणा की, "हमारे कौएतर पक्ष के नेता गरुड़ पंत प्रधान (प्रधानमंत्री) बने हैं।"

इतना कहने के पश्चात् उसने गरुड़ का अभिनन्दन किया।

गरुड़ ने गम्भीरतापूर्वक पूछा– "यद्यपि अपने पक्ष का नेता मैं ही हूँ पर हमारे पक्ष के कितने लोग चुनकर आए हैं?"

तोता ने कहा– "उन्चास"

गरुड़ ने शांतभाव से कहा, "तोताजी! लोकशाही में 100 में से 49 बहुमत नहीं होता है।"

तोता भारतीय प्रवक्ताओं की नकल करते हुए बोला, "मुझे मालूम है। लेकिन हमारे विरोधी कौआ पक्ष के मात्र 47 उम्मीदवार चुनकर आए हैं। अत: निर्विरोध बहुमत हमारा ही हुआ।"

''कैसे हुआ?''-गरुड़ चिंतित स्वर में पूछा, ''49 और 47 यानी 96 । बचे हुए चार कौन है?''

''बचे हुए चार गिद्ध हैं।'' –तोता बोला, ''उनकी क्या गिनती है। बहुमत तो हमारा ही है।''

कौए रात भर आगे की रणनीति पर विचार करते रहे।

सुबह समाचार पत्र के कोने में गिद्धों की माँग छपी थी, ''हमें पंत प्रधान बनाओ।''

☆ ☆ ☆

गिद्धों के मतानुसार उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्यों कि उनके बगैर किसी का भी बहुमत हो नहीं सकता है।

दोनों बड़े पक्षों का एक जगह आना संभव नहीं है। अत: जिसको राज करना है उसे उन्हें अपना नेता मानना पड़ेगा।'' ''रहने दो जी ऐसे सपने आप क्यों देखते रहते हो''- भाग्यवान ने तंग आकर कहा। ''मैं तुम्हें बता दे रही हूँ कि लोग तुम्हें पहले ही देखकर नाना प्रकार की चर्चाएँ करते हैं और यदि ऐसा ही बोलते रहे तो लोग तुम्हें सीधा आगरा या एरवड़ा भेज देंगे।''

अरे यह सच थोड़े है। इसे तो कहते हैं 'पक्षियों की लोकशाही।'

✤

19.
बीच की दीवार

शाम को कहीं सफर से थका-हारा आया था। थोड़ी सी लेकर खाना खाया और सो गया। सुबह उठकर समाचार पत्र पढ़ रहा था। चाय का इन्तजार था। श्रीमतीजी चाय के साथ नाश्ता भी ले आईं। मैं तो डर गया। पर जानबूझ कर ध्यान नहीं दिया।

श्रीमतीजी ने कहा, ''अजी सुनते हो।''

मैं समाचार पत्र पढ़ता रहा।

उन्होंने कहा, ''क्या बहरे हो गए हो, सुनते नहीं?''

मैंने कहा, ''कहो।''

उन्होंने कहा, ''इधर कहीं तुम्हें जाना तो नहीं है? कोई सम्मेलन, कोई भाषण या कोई सेमिनार।''

''है, क्यों?''- मैंने नासमझ बनते हुए पूछा।

''बात ऐसी है कि जाते-जाते चेक साइन करते जाना। कोरा चेक।'' – हुकुम हुआ।

''कोरा चेक? क्या लेना है तुम्हें। कोई खरीददारी करनी है क्या?''- मैंने घबरा कर पूछा।

''घबरा क्यों रहे हो इतना। मैं अपनी सहेली के साथ घर बनाना चाहती हूँ''- श्रीमतीजी ने कहा।

''और यह अपना घर?'' मैंने पूछा।

''इसमें बच्चे रहेंगे। हम अपने नये घर में रहने जाएँगे।''

''मगर इस घर के रहते हुए नया घर बनाने का खर्चा क्यों?''

''क्योंकि ऐसा हमने तय किया है।'' – उसने कहा, ''और खर्चा कोई ज्यादा नहीं आनेवाला। एक ही प्लाट पर हम दोनों एक ही साथ घर बनानेवाले हैं।''

''उससे क्या होगा?''

''उससे क्या होगा, बीच की दीवार का खर्चा नहीं आने वाला है।''

''यानी कि तुम्हारे इस नए घर में बीच की दीवार नहीं रहेगी?''

''हाँ, नहीं रहेगी। हमारी सहेलियों का प्यार ही ऐसा है। फिर बीच की दीवार की आवश्यकता ही क्या है।''

''बाई! पड़ोसी से इतना ही प्रेम करने के लिए ईसा मसीह ने कहा है। पर उन्होंने भी यह नहीं कहा कि बीच की दीवार की आवश्यकता नहीं है।''

''भूल गए होंगे।'' – श्रीमतीजी ने कहा, ''मुझको उनका पता बता दो। मैं कहूँगी उनसे कि अब आगे बीच की दीवारों की आवश्यकता नहीं है। और हाँ! जाने से पहले चेक पर हस्ताक्षर अवश्य कर देना।''

✤

20.
पाप और गंदगी

महाराष्ट्र के साहित्यकार गोंनी दाण्डेकर कुछ समय तक गाड़गे बाबा के सानिध्य में रहे थे। एक बार गाड़गे बाबा कहीं बाहर गए। उन्हें वापसी में काफी दिन लगे। वापस आकर उन्होंने पाया कि गोंनी दाण्डेकर के हाथ में बेड़ियाँ पड़ी थीं।

बाबा ने पूछा, ''कहाँ डाका डाला जो बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं?''

गोंनी दाण्डेकर ने कहा, ''बाबा! ये हाथ खुले रहने पर अच्छे-बुरे अनेक विचार आते हैं, और उन पर आचरण करने की इच्छा होती है। सद्आचरण कर मैंने ये बेड़ियाँ स्वयं ही डाल ली हैं।''

बाबा हँसे और बोले, ''गोंनी! दुनिया के उद्धार का समय शायद आ गया है। तुम्हारे जैसा ही पाप और गंदगी से घृणा करनेवाला एक सद्पुरुष आज मुझे मिला था।''

''बाबा! वह क्या कह रहा था?'' – गोंनी दा ने उत्सुकता से पूछा।

बाबा ने जवाब दिया, ''वह आदमी अपना बायाँ हाथ बाँधकर रसोई पका रहा था। मैंने उससे पूछा कि भगवान ने जब तुम्हें दो हाथ दिए हैं तो एक हाथ बाँध कर रसोई क्यों पका रहे हो।''

उस आदमी ने कहा, ''बाबा मेरा बायाँ हाथ पैखाना धोता है। उसे मैं रसोई को कैसे लगाऊँ।

''वाह! वाह!!'' गाड़गे बाबा ने उस आदमी को कहा। ''क्या बात कही तुमने! गन्दगी अर्थात् पाप, पाप अर्थात् गन्दगी। आप हाथ बाँधकर पाप मुक्त हो गए, अर्थात् गंदगी मुक्त हो गए।''

गाड़गे बाबा की इस शाबाशी पर वह व्यक्ति बहुत खुश हुआ और बाबा से कहा, ''बाबा! अब आप और लोगों से भी हाथ बाँधकर रसोई पकाने के लिए कहिए।''

''हाँ, हाँ! अवश्य लोगों को हाथ बाँधने को कहूँगा। कहने को छोड़ो, मैं अपना हाथ अभी तुम्हारे हाथ से बँधवा लेता हूँ।''

वह आदमी बहुत आनन्दित हुआ। वह रस्सी लाया। बाबा का बायाँ हाथ उसने बाँध दिया। सब लोग देख रहे थे, सोच रहे थे, ये क्या चल रहा है। हाथ बाँधे रहनेवाले आदमी लोगों से बोला, ''देखो भाई! गाड़गे बाबा ने मेरा अनुकरण किया है। तुम भी ऐसा ही करो। पाप, गंदगी वर्ज करो।''

''महाराज!''–गाड़गे बाबा उस आदमी से बोले–''हाथ तो बाँध दिया। लेकिन गन्दगी तो पेट में रहती है। मैं पेट को कैसे बाँधू, इतना बता दो।''

वह आदमी निरुत्तर हो गया।

गोंनी दाण्डेकर को जो समझना था समझ लिया। उन्होंने बेड़ियाँ निकाल कर फेंक दीं।

21.
जिसने पाप न किया हो

बात चली तो याद आई।

एक बार प्रातः वेला में ईसा मसीह बैठे हुए थे। उस समय व्यभिचार करते हुए एक स्त्री पकड़ी गई। स्त्री को लेकर शास्त्रज्ञ और पड़ोस के लोग ईसा मसीह के पास आए। उन्होंने उस स्त्री को बीचों-बीच खड़ा किया और ईसा मसीह से कहा, ''गुरुजी! यह स्त्री व्यभिचार करते हुए पकड़ी गई है। मूसा के शास्त्र नियमानुसार हमें ऐसी आज्ञा है कि ऐसी स्त्री को पत्थर मारकर मार डालना चाहिए। पर आप इसके बारे में क्या कहते हैं?''

ईसा मसीह पर दोषारोपण हेतु मौके की तलाश में ही इन लोगों ने उनसे यह सवाल पूछा था। ईसा झुक कर अँगुलियों से जमीन पर कुछ लिखने में तल्लीन थे। लोग

उनसे बार-बार यह सवाल पूछ रहे थे।

ईसा मसीह की तल्लीनता भंग हुई। उठकर उन्होंने कहा, ''तुम में से जिसने पाप नहीं किया है उसे इस महिला को पहला पत्थर मारना चाहिए।''

यह कह ईसा मसीह पुन: लिखने में व्यस्त हो गए।

ईसा मसीह के इस वचन के बाद वृद्ध से वृद्ध यहाँ तक कि आखिरी व्यक्ति तक भी एक-एक कर चले गए। ईसा मसीह अकेले रह गए। वह स्त्री भी वहीं खड़ी थी। ईसा उठे और उस स्त्री से पूछा, ''बाई! तुझे किसी ने दोष नहीं लगाया? तुझे दोष देने वाले कहाँ हैं? उन्होंने कोई सजा नहीं सुनाई?''

उसने कहा, ''नहीं प्रभुजी।''

तब ईसा ने कहा, ''मैं भी तुम्हें सजा नहीं दूँगा। जा, यहाँ से आगे जा।'

✤

22. मच्छिन्द्रनाथ का डर

मौत का भय मनुष्य को हर जमाने में डराता रहा है और डराता रहेगा। अपने घुमन्तुओं में कहा जाता है कि एक बार मच्छिन्द्रनाथ स्त्री राज्य में पहुँच गए। स्त्री राज्य अर्थात् मातृसत्तात्मक समाज। स्त्री राज्य की रानी मच्छिन्द्रनाथ के तपोबल से मोहित होकर उनके प्रेम में पड़ गई। मच्छिन्द्रनाथ बहुत दिनों तक स्त्री राज्य से वापस नहीं आए। अत: गोरखनाथ उन्हें ढूँढ़ने निकल पड़े। पूछते-पूछते गोरखनाथ स्त्री राज्य में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने देखा कि गुरु मच्छिन्द्रनाथ रानी के ऐश्वर्य प्रेम में पड़े हुए थे। ये तो पाप था। गोरखनाथ एक ढोलक लेकर आए और राजमहल के सामने बैठकर बजाने लगे। ढोलक में से आवाज आ रही थी-

''चलो मच्छिन्द्र गोरख आया।''

ढोलक के संदेश को सुनकर मच्छिन्द्रनाथ आश्वस्त हुए लेकिन जिस मोह में वे पड़ चुके थे, और जिसने जकड़ रखा था वह उनसे तोड़े-तोड़ा नहीं जा रहा था। रानी का दिल तोड़ना भी उनके लिए संभव नहीं था। गोरखनाथ भी कुछ कम नहीं थे। थे तो वे आखिर मच्छिन्द्रनाथ के ही शिष्य। राजमहल के सामने वे बैठे ही रहे और उनका ढोलक बजाना भी जारी रहा।

अन्तत: मच्छिन्द्रनाथ राजमहल से बाहर आए। उनकी झोली भरी हुई थी।

वापसी में हमेशा की तरह गोरखनाथ आगे-आगे चल रहे थे। चलते-चलते एक गहन अरण्य आया। मच्छिन्द्रनाथ एकदम रुके और बोले, ''गोरख तू आगे-आगे चल रहा है, पीछे से कोई आया तो ..। मुझे डर लगता है, तू मेरे पीछे-पीछे चल।''

मच्छिन्द्रनाथ की बात सुनकर गोरखनाथ आश्चर्यचकित हुए। अपने तपोनिष्ठ गुरु को डर किस बात का लग रहा है, यह उनके समझ में नहीं आया। गहन अरण्य को पार करते हुए मच्छिन्द्रनाथ आगे-पीछे, आगे-पीछे हो रहे थे। अन्तत: जंगल समाप्त हुआ। आगे एक कुआँ था। कुएँ पर वे रुके। वहीं मच्छिन्द्रनाथ अपनी झोली गोरखनाथ को देते हुए बोले, ''गोरख! जरा दिशा-मैदान होकर आता हूँ तब तक ये झोली तू सम्भाल। नीचे मत रखना और किसी को देना भी मत। मुझे डर लगता है।''

मच्छिन्द्रनाथ के दूर चले जाने के पश्चात् गोरखनाथ ने झोली के अन्दर झाँका। झोली में हीरा, माणिक और सोने के मूल्यवान अलंकार भरे पड़े थे।

कुछ देर आराम करने के बाद गोरखनाथ और मच्छिन्द्रनाथ आगे बढ़े। एक और गहन जंगल प्रारम्भ हुआ। फिर मच्छिन्द्रनाथ ने गोरखनाथ से कहा, ''तू पीछे-पीछे चल मैं आगे-आगे चलता हूँ। मुझे डर लगता है।''

यह सुनकर गोरखनाथ ने शान्त भाव से कहा, ''गुरुजी! अब डर काहे का डर पीछे रह गया।''

तब मच्छिन्द्रनाथ ने अपनी झोली में झाँका। वे देखते हैं कि झोली में अलंकारों की जगह उतने ही वजन के पत्थर के टुकड़े रखे हुए थे।

कहते हैं आगे चलते हुए अब मच्छिन्द्रनाथ को डर नहीं लग रहा था।

✤

23.

समझदारी की खोज

गुजरात में बड़ौदा जिले के अन्तर्गत ही शहर से कोई 90-100 किलोमीटर दूर तेजगढ़ नामक एक गाँव है। यह गाँव छोटा उदेपुर के अन्तर्गत आता है। वहाँ के राजघराने के वारिश श्री वीरेन्द्र सिंह चौहान, जोकि सांसद भी रहे थे, के सहकार्य से डॉ. गणेश नन्दन देवी ने तेजगढ़ में भाषा संशोधन एवं प्रकाशन केन्द्र के अन्तर्गत ट्राइबल ट्रेनिंग अकादेमी की स्थापना की है। आदिम जातियों की बोली पर तथा और भी भारतीय भाषाओं पर वहाँ संशोधन, अध्ययन और आवश्यक लगे तो प्रकाशन हो, यह उस केन्द्र का उद्देश्य है।

☆ ☆ ☆

एक बार 'आदिवासी की ज्ञान पद्धति' विषय पर गोष्ठी थी। डॉ. जी. एन. देवी ने मुझे बुलाया। उनको मालूम है मुझे कहानियाँ कहने का शौक है। उन्होंने मुझे कहानी सुनाने के लिए कहा।

भारत के अनेक प्रांतों से लोग आए हुए थे। मराठी चलने वाली नहीं थी। हिन्दी में कहना जमेगा ही यह भी नहीं कहा जा सकता था। दरअसल मैं घबरा ही गया था। लेकिन कहते हैं न 'बात कहो जन में, अपमान रखो मन में।' तो मैं कुछ बोला उसमें का अपमान छुपा के आपको कह देता हूँ।

☆ ☆ ☆

दोस्तों! संयोजक ने मुझे कहानी सुनाने के लिए कहा है। मैं कोई पुराने जमाने की कहानी सुनानेवाला नहीं हूँ। कहानी मेरे पड़ोस की है उसे सुनाता हूँ।

शायद अपवाद ही हो, पर सुयोग से मुझे अच्छा पड़ोसी मिल गया है।

मेरे पड़ोसी के लड़के की शादी हुई। लड़का पढ़ा-लिखा, अच्छा, खूबसूरत और नौकरी पर लगा हुआ था। लड़की भी अच्छी मिली थी। शादी होने के बाद क्या हुआ मालूम नहीं, लड़का खोया-खोया सा उदास रहने लगा। शादी मैंने ही तय करवाई थी। देखकर मुझे दुःख हुआ।

एक दिन मैंने उससे पूछा, ''सनी बेटा ! आजकल तू उदास रहता है। क्या बात है? क्या तू बीमार है?''

''नहीं चाचा, कोई बीमारी नहीं है।''- उसने कहा।

''फिर''-मैंने पूछा, ''तुझे बहू पसन्द नहीं आई? या तुम्हारी पटती नहीं?''

''पसन्द आई। उसका लाया हुआ दहेज, उसका घराना सभी कुछ पसन्द आया।'' वो कुछ रुका और बोला, ''सिर्फ वो समझदार नहीं है।''

''अरे!'' -मैंने उसको समझाया। ''सहवास से वह समझदार भी बन जाएगी, तू चिंता मत कर।'' वह कुछ देर मेरे पास उदास बैठा रहा और चला गया। चार आठ महीने ऐसे ही गुजरे। इस बीच उसके मुख पर कभी हँसी नहीं दिखाई दी।

एक बार मैं एक महीने के लिए दौरे पर बाहर चला गया। वापस आने पर मैंने देखा कि अब वह पुनः पहले की तरह हँसने-खेलने लगा था।

चार-छः दिनों बाद किसी छुट्टी पर वह सपत्नीक मेरे घर आया। दरवाज़ा मैंने ही खोला था। मैंने उसे बैठाया और उसकी पत्नी ने कहा, ''जा बेटी अपनी आँटी को चाय-नाश्ता बोल।।''

उसकी पत्नी के जाने के बाद मैंने धीरे से उससे पूछा, ''क्यों खुश दिख रहा है।''

उसने कहा, ''हाँ अंकल, मैं बहुत खुश हूँ।''

मैंने पूछा, ''भाई! पिछली बार तू कह रहा था तेरी बहू समझदार नहीं है।''

उसने कहा, ''नहीं अंकल, अब वो समझदार हो गई है।''

मैंने पूछा, ''तूने ऐसा कौन सा जादू कर दिया कि वो अचानक समझदार हो गई है।''

उसने कहा, ''नहीं अंकल बात ये है कि अब वो विपुल की साड़ियाँ पहनने लगी है।''

मेरी समझ में ये नहीं आ रहा था कि विपुल की साड़ियों का और समझदारी का क्या संबंध है, क्या रिश्ता है। दोनों नाश्ता लेकर खुशी-खुशी चले गए।

चार-आठ दिन बाद मुझे फिर से बड़ौदा आना था।

तीन दिन बाद सनी की पत्नी मेरे पास आई और कहने लगी- "अंकल! आप बड़ौदा जा रहे हैं?"

मैंने कहा, "हाँ बेटी! बड़ौदा जा रहा हूँ।"

"बड़ौदा बड़ा शहर है?, उसने पूछा।

मैंने कहा, "हाँ ! बड़ौदा बड़ा शहर है। तुझे कुछ मँगवाना है?"

उसने कहा, "हाँ अंकल!

"क्या मँगाना चाहती है? बता दो, लेता आऊँगा।

उसने कहा, "हाँ अंकल बताती हूँ पर यह बात उनको पता नहीं लगनी चाहिए।"

मैंने कहा, "ठीक है, क्या मँगवाना चाहती हो?"

उसने कहा, "कुछ नहीं बस इनके लिए ड्रेस मेटिरियल ला दीजिए- विपुल का।

✤

24.
बंजारा बोली में रावण

आदिवासियों के लोक साहित्य और लोक परम्परा का अभ्यास एक अलौकिक अनुभूति होती है। आदिवासियों के लोक साहित्य का अभ्यास करने वाले बहुत सारे अभ्यासक सामने आए हैं। उनमें से अनेकों का कहना है कि रावण आदिवासियों का राजा था। भारत में रामकथा के कई पर्याय सामने आते हैं। हर प्रान्त में, हर बोली में रावण को भी अनेक रूप दिए गए हैं। रावण की ऐसी ही एक कहानी हमारी बंजारा बोली में है।

रावण सीता का पिता था। ऐसा कुछ लोग मानते हैं। तो रावण ने सीता का अपहरण क्यों किया?

भारतीय दण्ड विधान संहिता 498 'अ' के अनुसार ही यदि पहले के जमाने में ससुराल गई हुई लड़की को ठीक से रखा न गया तो अपनी लड़की को लोग वापस ले आते थे। कहीं यह बात तो नहीं है? रावण दुष्ट था ऐसा भी नहीं है। समस्त मानव समाज को सुखी करने का उसका तीन सपना था। जिसमें पहला स्वर्ग तक सीढ़ी लगाना, दूसरा आग से धुँआ नहीं निकलने देना (आग से धुँआ निकाल देना) तथा समुद्र का पानी मीठा करना था। रावण के ये सपने मेरे लिए पहेली थे। मैं इनके अर्थ ढूँढ़ रहा था।

एक बार एक बुजुर्ग ने कहा, "बाबू! तुम्हारा झूठा समाजवाद जब आएगा तब आएगा। रावण ने समाजवाद का भव्य स्वप्न बहुत पहले ही देखा था। दुनिया भर के दलितों, वंचितों, शोषितों को स्वर्ग ले जाने की उसकी तैयारी थी। वह सबको स्वर्ग के समान सुखों का अधिकार देना चाहता था। आग से धुआँ निकालने का तात्पर्य आदमी के मन से अहंकार निकालना, क्रोध निकालना था। इसी अहंकार वश उसकी सोने की लंका जल गई थी। यह बात वह भूला नहीं था। और बाबू यदि मन का अहंकार निकल जाए, क्रोध निकल जाए तो दूसरे की आँखों के आँसू मीठे हो जाते हैं। समुद्र का पानी मीठा करने का तात्पर्य यही है। यानी समुद्र के खारे आँसू मीठे हो जाते हैं और यही उसके सपने का सही अर्थ है।

✤

25.
सिद्धि

आदमी की श्रद्धा कब अंधश्रद्धा में बदल जाए इसका कोई भरोसा नहीं होता। बचपन में मैं अत्यंत धार्मिक प्रकृत्ति का था। बाबाओं के अलौकिक चमत्कार, उनके तपोबल और उनकी सिद्धियों के बारे में सोचता रहता था। साथ ही मैं इन्हें आत्मसात करने के विषय में भी सोचता रहता था।

☆ ☆ ☆

काली हल्दी की एक बात

मेरे कबीले से 15-20 किलोमीटर की दूरी पर एक गाँव है। सुना है मेरे जन्म से पूर्व वहाँ एक साधु पुरुष आकर रहने लगा था। उस गाँव को छूती हुई एक पहाड़ी थी। साधु पुरुष ने उस पर एक मंदिर बनवाया। मंदिर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनवाई और मंदिर का एक भव्य प्रवेश द्वार भी बनवाया। देखते ही देखते उनका प्रभाव बढ़ा, भक्त बढ़े, निर्माण कार्य बढ़ा। उन्होंने और भी कई मंदिर बनवाए। उनकी कीर्ति बढ़ी। लोग उनको देव कहने लगे थे। परन्तु उनकी उम्र, उनका नाम और उनका गाँव कुछ भी लोगों को मालूम नहीं था। उनकी आमदनी के साधन तथा उनके आराध्य देव के नाम भी मूलम नहीं थे। वे कभी हनुमान का मंदिर बनाते थे तो कभी कृष्ण की मूर्ति स्थापित करते थे। उधर मराठवाड़ा में उनके द्वारा शंकर की मूर्ति तथा मंदिर स्थापित करने की बात भी सुनने में आती है। प्रसार शक्ति साधु लोगों की विशिष्टता होती है। उनकी प्रसार शक्ति और कीर्ति में घनिष्ठ संबंध होता है। लोगों को मालूम रहता है परन्तु अंधविश्वास के चलते उन पर भरोसा किए रहते हैं और साधु पुरुषों के पास जाते रहते हैं।

साधुजी एक ही आसन पर बैठते थे और निर्माण कार्य की मजदूरी हो या भंडार घर का बिल या कुछ और। सभी के लिए वे अपने आसन के नीचे हाथ डालते और पैसे निकालकर दे देते थे। भक्तों द्वारा दिया गया दान भी इसी आसन के नीचे रखा जाता था। वहाँ इस व्यवहार, इस लेन-देन के लिए दीवानजी या कारकुन नहीं था। इसलिए उनको काली हल्दी की सिद्धि प्राप्त है, ऐसा लोग कहने लगे थे। यह काली हल्दी वो अपने आसन के नीचे रखते हैं। इसलिए उस आसन के नीचे से उन्हें जितना पैसा चाहिए उतना वो निकाल सकते हैं। ऐसा इस काली हल्दी की सिद्धि का स्वरूप था। सब समझने लगे थे कि ये देव विशिष्ट राजकीय नेताओं को आशीर्वाद देते थे और विशिष्ट राजकीय नेताओं को श्राप।

1983-85 के अंदाज में हमने 'पुसद' ताल्लुका में एक पदयात्रा निकाली थी। विविध जातियों और धर्मों के युवक उसमें शामिल हुए थे। मुझे आगे जाकर इन पदयात्रियों की भोजन और निवास की व्यवस्था करने के लिए चुना गया। हमारा एक पड़ाव देव के गाँव में आ रहा था। अतः मैं जाकर देव से मिला। अपने आगमन का कारण-हेतु बताया।

वे बोले, ''हम पचास क्या पाँच हजार लोगों के भोजन की व्यवस्था कर सकते हैं। मगर बच्चे इतना बता कि तुम्हारे इस पदयात्रा में किन समाजों के लोग चल रहे हैं?''

''हर समाज, हर जाति का युवक हमारी पदयात्रा में शामिल है।''- मैंने उत्साहित होकर कहा।

''कैसे जमेगा?'' देव बोले, ''यहाँ परधर्मियों का प्रवेश-निषेध है।''

मैं उठकर चला आया। मैंने वहाँ से आगे तीन किलोमीटर पर पदयात्रियों की भोजन और निवास की व्यवस्था की। पूर्व नियोजित कार्य सम्पन्न हुआ।

देव के बारे में और एक प्रसिद्धि थी। देव की उम्र को लेकर भी अनेक अटकलें थी। कोई कहता था कि उन्होंने चाँद देव के साथ साधना-सिद्धि की है तो कोई कहता था कि ज्ञानेश्वर और तुकाराम के साथ एक ही पंगत में खाना खाया है। कुछ लोगों का यह मानना था कि छत्रपति शिवाजी को संकट के समय में उन्होंने अपने सिद्धि-बल से मदद की थी। देव चिरंजीवी हैं यह सर्वप्रचारित बात थी। महाराष्ट्र राज्य के मराठवाड़ा क्षेत्र के दो नेता भी देव के अनन्य भक्त थे।

देव 1988 में एक दिन नागपुर के मेडिकल कॉलेज में शिव हो गए अर्थात् मर गए। उनके अनेक भक्त थे, जिनमें मेरे परिचित भी थे। उन सभी का एक ही कहना था, ''किसी ने अवश्य ही काला जादू किया होगा अन्यथा देव मरनेवाले नहीं थे। देव तो चिरंजीवी थे। वे कलयुग के अन्त तक रहने वाले थे।

''आप कब तक रहनेवाले हो?'' मैंने उनमें से एक से पूछा।

''देव रखेगा तब तक।'' उसने कहा।

मैंने कहा, ''भले आदमी, जिस देव को अपनी देह नहीं सम्भालने आया, वह तुम्हारी देह की क्या चिंता करेगा।'' सुनकर वह आदमी सकपकाया। पर उसने जो सिर हिलाया था उसमें मेरे कहने के बाबत पक्का इनकार था।

✤

26.
अभेद्य संगठन

महाराष्ट्र की गुणवान अभिनेत्री स्मिता पाटिल अमड़था की थी। अमड़था धुले जिला का एक गाँव है।

एक बार वहाँ चारागाह को लेकर बड़ा तूफान आया था। इस लड़ाई में आदिवासियों के बाजू से साम्यवादी आन्दोलन से जुड़े युवक बाबा आड़ाव और हम सब शामिल हो चुके थे। स्थानीय संगठनों ने एक मोर्चा भी निकाला था। मैं इसी संबंध में धुलिया गया था। मैं स्मिता पाटिल के गाँव अमड़था पहुँचा। वहाँ के 'छात्र वाहिनी युवा संगठन' ने एक सभा रखी थी। उनके भाषण हुए।

अमड़था में उस दिन सैनिक छावनी का स्वरूप आ गया था। एस.आर.पी. और पुलिस के बहुत सारे जवान थे और उनके तम्बू भी थे। यहाँ तक कि टैंक भी थे। पूरे वातावरण में खिंचाव सा, एक तनाव सा था।

सभा समापन के बाद मैं वापस लौट रहा था। वापसी में बहुत सारे युवक आदरभाव से एक दूसरे से बातें कर रहे थे। उनका कहना थोड़े भाव फर्क से ठीक ही था। स्वतन्त्रता का शोषण रोकने के लिए एक राष्ट्रव्यापी संगठन की आवश्यकता है। जे.पी. जी (श्री जयप्रकाश नारायण) का संगठन विषयक विचार याद आ रहा था।

बिहार आन्दोलन का समय था और उसी समय 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' की स्थापना की गई थी। देखा जाए तो जे. पी. उस समय हमारे राष्ट्र नायक थे। हम कई दोस्त पटना गए थे। कदम कुआँ के निवास स्थान पर पहुँचे। रात्रि का समय था। वे बहुत व्यस्त थे। हम महाराष्ट्र से गए थे और महाराष्ट्र का अमीर अमर हबीब उस समय उनका नजदीकी युवक कार्यकर्त्ता था। उसने जे.पी. से हमारी मुलाकात के लिए पाँच मिनट का समय लिया। परन्तु इसमें एक शर्त थी कि जो कुछ भी बोलना था या पूछना था उसे पहले लिखकर देना था। हम सभी ने विचार कर लिख दिया कि- ''देश को मिली हुई आजादी, मिला हुआ स्वराज्य, सुराज में परिवर्तित करने हेतु हमें एक मजबूत संगठन की जरूरत है। ऐसे संगठन के बारे में हमारा मार्गदर्शन करें।'' ठीक समय पर हम उनके कक्ष में पहुँचे। अमर हबीब वहीं था। पहले से लिखकर दिए हुए चर्चा के मुद्दे के कागज को जे.पी. ने देखा। फिर उन्होंने हमारी तरफ देखा और कहा, ''ऐसे बहुत सारे संगठन हमारे देश में हैं। तुम लोग अपनी पसन्द की चुनो और राष्ट्र के उत्थान में लग जाओ।'' यह कहकर जे.पी. चुप हो गए।

एक मिनट की मुलाकात खत्म हो रही थी। और उसमें भी जे.पी. कुछ बोल नहीं रहे थे। तभी हममें से किसी ने कहा, ''ऐसे सभी संगठन टूटने वाले हाते हैं। हम तो एक अभेद्य संगठन बनना चाहते हैं।''

फिर जे.पी. ने अपनी उदार नजर हम पर डाली और कहा, ''तुम कल से डाके डालो।''

ये क्या सुन रहे थे हम। हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। राष्ट्र नायक जे.पी. मार्गदर्शन माँगने आए युवकों को डाका डालने के लिए कह रहे थे।

''क्यों?''-मैंने पूछा। ''उससे क्या होगा।''

जे.पी. ने शांत भाव से कहा, ''क्योंकि तुमको न टूटने वाला संगठन होना है न। चोर-लूटेरों का संगठन कभी टूटता नहीं। यदि उसमें से कोई टूट गया तो वह बचता नहीं।'' जे.पी.जी ने अमर की तरफ और अमर ने हमारी तरफ देखा। समय और मुलाकात खत्म होने का इशारा किया।

मुलाकात के बाद पटना से वापस आते हुए मैं इस देश में टूटे हुए और न टूटे हुए संगठनों की गणना दिल ही दिल में कर रहा था।

स्मरण के आइने में झांकता हुआ और इस घटना को याद करता हुआ मैं अमड़था से आते हुए जे.पी.जी को गए हुए दिन गिन रहा था।

27.
नेताजी और जेल

पी. रामचन्द्र सन्द्री नाम का एक आदमी मेरे गाँव में रहने आया। मेरा व्यवसाय प्रेस का था। वह व्यवसाय से कॉन्ट्रैक्टर था। अपने व्यवसाय में इस व्यक्ति ने इतना कमाया कि रखना कहाँ है यह भी उसे समझ में नहीं आता था। सुना है कि कॉन्ट्रैक्टरी के धंधे में यदि आदमी दिलदार रहा, थोड़ा उदार रहता है तो उसकी कमाई का कोई अन्त नहीं होता है। पी. रामचन्द्र सन्द्री अति उदार व्यक्ति था क्योंकि उसने उदारता को पाला-पोसा था। उसे बीच-बीच में सनक सवार होती थी।

एक बार उसे सनक सवार हुई। जबकि वह मराठी न समझ सकता था, न लिख सकता था और न ही बोल सकता था। उसने मराठी साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया। तेलगू भाषी इस आदमी के मराठी साप्ताहिक का मैं मुद्रक बना। उसके आर्थिक दान के किस्सों के कारण बस्ती में उसका बहुत रोआब था। एक नकदी का ग्राहक मिलने का आनन्द और समाधान मुझे होता था। चार-छः अंक निकला। उसके बाद एक बार मैंने पाया कि पी. रामचन्द्र सन्द्री के इस साप्ताहिक का लेखक, मुद्रक, इतना ही नहीं पाठकों में मैं अकेला था। आप सोच रहे होंगे कि अपना ही लिखा मैं क्यों पढ़ता होऊँगा। मैं पढ़ता था या यों कहिए कि मुझे पढ़ना पड़ता था। अंक निकला कि शाम को पी. रामचन्द्र सन्द्री की गाड़ी मेरे घर के सामने पहुँच जाती थी। उस गाड़ी से अपने घर पहुँचते ही वह सबको आदेश दे देता था कि ''आनेवालों से कह देना कि मैं घर पर नहीं हूँ।'' हम लोग उनके पढ़नेवाले कमरे में बैठ जाते थे। उनके पढ़ने वाली मेज पर तले हुए काजू, व्हैट-69 की बोतल तथा ग्लास, बर्फ के टुकड़े यही सब होते थे। इधर-उधर भी किताबों की रैक की जगह, फाइलिंग कैबिनेट की जगह बार कैबिनेट और रेफ्रीजेटर होता था। बीयर की बोतल एक हाथ में और व्हिस्की का पैग लिए हुए वे खत्म होने तक मेरे व्यवसाय, मेरे लेखन के बारे में पूछते रहते थे। दूसरी बीयर की बोतल खोली और तीसरा पैग भरा तो वे कहते थे, ''हाँ! तो आत्माराम जी पढ़ के सुनाओ हमारा आज का पेपर। क्या-क्या लिखा है उसमें।''

फिर मैं ताजा अंक लेकर पढ़कर बताने लगता था। उस वक्त वो मग छोड़ के बोतल मुँह को लगा लेते थे। मैं पढ़ रहा हूँ। यह सोचकर वे चुप-चाप आधी पी हुई बीयर में व्हिस्की उड़ेल लेते थे और निर्विकार भाव से पीते-बैठते थे। अंक पढ़कर समाप्त होने पर मैं रुकता था।

''अरे क्यों थम गए। बांचो-बांचो मैं सुन रहा हूँ।'' वे कहते थे।

''सन्द्री साहब! मैं पूरा पेपर पढ़ चुका हूँ।'' मैं चिन्तित स्वर मैं उनको कहता था।

''पढ़ चुके? बहुत अच्छा लिखा है। अब तुम बीयर पिओ, व्हिस्की पीओ, काजू-पिस्ता खाओ। जो इच्छा हो ले लो।''

''नहीं बस! मैं और नहीं लूँगा।'' -मैं कहता था।

''अरे! ऐसा कैसे होगा। आत्माराम जी तुमको पैसा चाहिए न! तो लो। अब देखो! हमारे इंजीनियर, डी.ई., बड़े-बड़े साहब लोग रात-रातभर पीते हैं। हमें साथ में लेते हैं। मुझे अच्छा लगता है। तुम भी यही करो, फिर मैं तुम्हारा परिचय करवा दूँगा और तुम भी कॉनट्रैक्टर बन जाओगे''।

मैं कहता, ''मगर सन्द्री साहब! मेरा प्रेस...''

''उसको क्या, उसको चलाने में क्या अक्ल लगती है? वो मैं चला लूँगा।''

मैं बीयर का मग भरता। सन्द्री शुरू हो जाते, ''आत्माराम जी, आज का अंक पढ़के बताया। अच्छा लगा। लेकिन मैं समझा नहीं। जरा फिर बांच के बताओ हिन्दी में।''

मेरी पी हुई पूरी उतर जाती थी। इस तेलगू आदमी को मराठी का पेपर फिर मैं हिन्दी में पढ़के बताता था।

रात के एक-दो बजे तक यह पढ़ना-पीना चलता था। मैं जाने के लिए निकला कि वो भी उठते थे। कहते थे, "आत्माराम जी खाली हाथ मत जाइए। रात को ज्यादा हो गई तो सुबह पीने की जरूरत पड़ेगी।"

"हाँ! हाँ!"-मैं कहता। बीयर की दो-चार बोतलें, व्हैट-69 के अद्धे और अगले ताजे अंक का लेखन, मुद्रण का काम और बिल लेकर वे अपनी गाड़ी से मुझे भेज देते।

मैं जिस दिन 'ले' कर निकलता था, लेखन-मुद्रण का काम उसी दिन समाप्त हो जाता था। परन्तु अंक पढ़ने का काम अगले अंक तक चालू रहता था।

उस रोज-रोज के पढ़ने के काम से भाग्यवान को बड़ी नाराजगी होती थी। उन्होंने मुझे सन्द्री का काम छोड़ने को कहा। उनके बार-बार कहने से मुझे सन्द्री का काम छोड़ना पड़ा।

काम तो बन्द हो गया पर सन्द्री से मेरी दोस्ती बनी रही। बीच-बीच में वो गाड़ी भेजते थे, कुछ न कुछ काम निकालते थे, बुला लेते थे और फिर सब कुछ वैसा ही होता था जब मैं उनका अंक छापता था।

☆ ☆ ☆

उस रात को पी. रामचन्द्र सन्द्री खुद मेंरे घर पहुँचे। आने के साथ ही कहने लगे, "आत्माराम जी मेरा एक काम आपको करना है।"

मैंने भाग्यवान की नजर को देखते हुए पूछा, "कैसा काम?"

वे कहने लगे, "मैंने सुना है कोई पुलिस इंस्पेक्टर तुम्हारा रिश्तेदार है।"

"है। वो मेरे दूर के रिश्ते के दामाद लगते हैं।"- मैंने कहा।

"बस! फिर मेरा काम बन गया। अब करवा दो उनसे मेरा काम।"

"कोई केस निकालना है?" -मैंने पूछा।

"नहीं, नहीं", उसने जल्दी-जल्दी से कहा। "केस निकालना नहीं, केस करवाना है।"

"किस पर केस करवाना है?"- मैंने सावधानी से पूछा।

"मुझ पर।" सन्द्री ने कहा।

क्या?"- भाग्यवान ने चिल्ला कर पूछा। रिमोट हाथ में लेकर टी.वी. देखनेवाला भाया सावधान हुआ। उसने आवाज बन्द किया। नजर चित्रों पर रखी और कान हमारी तरफ लगा दिया।

"वो क्या है बहन जी..." सन्द्री कहने लगा, "मैं इतना सामाजिक काम करता हूँ पर सामाचार पत्र वाले छापते नहीं हैं। हम लोग परसों रास्ता रोको आन्दोलन करेंगे। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारे ऊपर केस हो।"

"वो तो होगा ही"- मैंने कहा "आन्दोलन वालों पर केस होता ही है।"

"वैसा केस नहीं आत्माराम जी" -वह दयनीय स्वर में कहने लगा, "मैं जेल जाना चाहता हूँ।"

"क्या"- मैं बोल पड़ा। "आप गिरफ्तार होना चाहते हैं, क्यो?"

"वो क्या है आत्माराम जी"- वह कहने लगा, "लीडर को जेल जाना चाहिए।"

भाया ने जैसे उस गाँव का नहीं है, इस भाव से कहा, "क्योंकि बापू, जेल जाए बगैर पब्लिक किसी को लीडर नहीं मानती।"

उसने अपनी दलील पेश की। मुझे उस पर दया आई। अब उसको वहाँ से निकालना कैसे हो समझ में नहीं आ रहा था। मैंने इंसपेक्टर को फोन करके सब कुछ बताया। इंस्पेक्टर कहने लगा, "मामा! किसी को ऐसे गिरफ्तार नहीं कर सकते। कानून में ऐसा कोई विधान नहीं है।"

"लेकिन यह व्यक्ति तो गिरफ्तार होने के लिए तैयार है।" मैंने कहा।

कुछ भी हो मामा ऐसे किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। क्षमा कीजिएगा।"

मैंने धीरे से पूछा, "मैं इसे क्या कहूँ।"

इंस्पेक्टर ने कहा, "हाँ उससे सुबह मिलने के लिए कहो। इसके बाद मैं बताता हूँ क्या कहना है।" उसने फोन रख दिया। उसके फोन रखने के बाद मैंने ऐसे ही धन्यवाद किया और फोन रख दिया।

उसके बाद मैं उनके पास गया। पी. रामचन्द्र सन्द्री

मेरी तरफ याचनापूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। मैं झूठी हँसी हँसता हुआ बोला– ''सन्द्री साहब कल आपका काम हो जाएगा। सुबह इंस्पेक्टर साहब ने बुलाया है।''

''मुझे?''– उन्होंने उत्साह से पूछा, ''गिरफ्तार होने के लिए।''

''नहीं सन्द्री साहब आपको नहीं, थाने में मुझे जाना है''–मैंने कहा।

''क्या?'' वो घबरा गए और चिल्लाए। ''क्या तुमको भी लीडर बनना है?''

''भाई! हमारी कहाँ ऐसी किस्मत।'' मैंने कहा, ''वो तो आपके काम के लिए साहब ने बुलाया है।''

''अच्छा-अच्छा'' – उनको बड़ा आनन्द हुआ। कहने लगे, ''गाड़ी रखके जाऊँ?''

''नहीं-नहीं।'' मैंने कहा, ''मैं स्कूटर से चला जाऊँगा।''

सन्द्री गए। जाते-जाते पाँच-पाँच सौ के दो नोट भाया को देके गए।

पी. रामचन्द्र सन्द्री रात भर सोये कि नहीं, मालूम नहीं। उनको ही मालूम होगा। लेकिन बस्ती जागने से पहले गाड़ी छोड़के वे साइकिल से निकल पड़े और रास्ते में जो भी उनको मिलता था उनको वे कहते थे, '' कोई दु:खी मत होना। पुलिस मेरे पीछे है। वह मुझे गिरफ्तार करनेवाली है।''

सुबह-सुबह ही इंस्पेक्टर का फोन आया, ''मामा! तुमको आने की आवश्यकता नहीं।''

''क्यों? सन्द्री को गिरफ्तार कर लिया क्या?'' –मैंने पूछा।

''नहीं! उसकी जरूरत नहीं। कल का पेपर पढ़ लेना।'' और उन्होंने फोन रख दिया।

दूसरे दिन के सामाचार पत्र का इन्तजार करने की जरूरत नहीं पड़ी। मेरे घर और प्रेस का फोन दिन भर बजता रहा। लोग पूछते रहे- सन्द्री को गिरफ्तार किया जानेवाला है? हो गया क्या? वो किस गिरोह का है –दाऊद का या गवली का?

रात में खाना खाते समय थके-बुझे आवाज में भाग्यवान ने पूछा, ''क्यों जी, इस पी. रामचन्द्र सन्द्री का पूरा नाम क्या है? यानी पी. का मतलब क्या है?

मैं क्या कहूँ मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

मुझे चुप देखकर भाया एकदम से चिल्लाया, ''पी. का मतलब-पागल।''

28.
कोट विशेषज्ञ

मेरे बचपन से पैंतीस-चालीस वर्ष की उम्र होने तक दर्जी, नाई, सुनार मैंने कभी ढूँढ़े नहीं। पिताजी ने जिन लोगों को बताया था मैं उन्हीं लोगों के पास जाता था।

एक दर्जी था। कहिए कि वह हमारे परिवार का दर्जी था। मैं उसके पास कपड़े ही नहीं सिलवाता था अपितु समय मिलते ही मैं उसकी दुकान पर जाकर बैठता भी था। गणपत बुरेदार- यही उसका नाम था। टूटी-फूटी दुकान, बहुत पीने से सूजी हुई आँखे, सफेद होते जा रहे बाल। ऐसा वो अति सामान्य दर्जी था। लेकिन वो कोट सिलने का विशेषज्ञ था। कोट स्पेशलिस्ट करके उसकी ख्याति थी। पर बदकिस्मती से कोट सिलवाने वाले व्यक्ति उस क्षेत्र में दो-तीन साल में एक-दो ही होते थे।

एक बार शाम को मैं गणपत के यहाँ ऐसे ही बैठा था। उसी समय दुकान के सामने एक नई सीएलो कार आकर खड़ी हुई। गाड़ी को मैं पहचानता था। गाड़ी में से राज्य के मुख्यमंत्री का भतीजा उतरा। हम एक दूसरे को पहचान गए। मैं स्टूल पर से उठकर खड़ा हुआ। उसने हाथ बढ़ाया। मैंने हाथ मिलाया।

''शादी का कार्ड मिला कि नहीं।''– तुषार बाबू ने

मुझसे पूछा।

''कैसे मिलेगा तुषार बाबू''– मैंने विनोद किया।

''कैसे मिलेगा कहने से क्या मतलब है।''- शर्माते हुए तुषार बाबू ने पूछा।

''तुषार बाबू! आपका कार्ड मैंने ही छापा है। फिर मुझे देने की क्या आवश्यकता है।''

''वो कुछ भी हो शादी में आना पड़ेगा।''– तुषार बाबू ने आग्रह किया।

''यह भी कोई कहने की बात है। मैं निश्चित ही आ रहा हूँ।''– मैंने जवाब दिया।

हमारी उम्र में फर्क होने के बावजूद वह मुख्यमंत्री का भतीजा था। अत: समर्थवान था। आखिर यही रीति है।

एका-एक तुषार बाबू घूमें और उन्होंने आवाज दिया– ''मोतीराम!''

'जी' कहते हुए मोतीराम सामने आया।

मोतीराम उनके घर का कुत्ते से लेकर बच्चों तक का सब कुछ करता था। मोतीराम घर के पूरे सदस्यों का चपरासी से सचिव तक सब कुछ था। उसके सामने आते ही तुषार बाबू बोले– ''आत्माराम जी आने वाले हैं। उन्हें कौन-सी गाड़ी में बैठना है यह तय होते ही उन्हें सूचित कर देना।

'जी' कहते हुए मोतीराम ने सिर हिलाया। ऐसा लगा मानो उसने सिर नहीं, पूँछ हिलाई हो। तुषार बाबू आगे गणपत की टूटी-फूटी दुकान की ओर बढ़ गए। गणपत बुरेदार नम्रता से खड़ा हुआ। उसकी आँखों में आश्चर्य और कृतज्ञता समा नहीं रही थी। उसको देखते हुए तुषार बाबू बोले– ''टेलर, काका साहब का कहना है कि पूरे विदर्भ में आपके जैसा सूट कोई नहीं सीता, कोई सी भी नहीं सकता। इसलिए उन्होंने मुम्बई से कपड़ा खरीदकर यहाँ भेजा है।''

''साहब की दया है, साहब मुझ गरीब पर...''– गणपत ने कृतज्ञता से कहा।

''तो क्या सिलाई करोगे। देखो! कपड़ा बहुत महँगा है'' –तुषार बाबू ने जानबूझ कर पूछा। उस पर दबाव लाया।

वे चाहते थे कि इस दबाव में वह ना कर दे और तुषार बाबू मुम्बई जाकर कोट सिलवा लेते।

''उसकी फिक्र मत करो बाबू। यहाँ यदि सोना आता है तो हीरा बनाके भेजता हूँ, हीरा।'' गणपत ने अभिमान से बोला।

''वो काका साहब ने बताया है मुझे। अब सवाल है समय का।'' – तुषार बाबू ने फिर से अपनी चाल चलने की कोशिश की। ''25 दिन रह गए हैं। क्या बाकी सब काम करते हुए सिल सकोगे मेरा सूट।''

''बाकी के काम!'' गणपत बड़े तिरस्कारपूर्वक बोला, ''दूसरे काम गए ऊँट के लिए। गाँव के बाकी कारीगरों से करवा लूँगा। आज से और अभी से मैं आपके ही सूट पर काम करूँगा।''

''बहुत अच्छा! कितनी सिलाई होगी?'' तुषार बाबू ने पूछा।

''साधारणत: साढ़े तीन हजार लेता हूँ साहब लोगों से। परन्तु उस समय मैं अन्य लोगों के काम भी करता रहता हूँ और सिलकर डेढ़-दो महीने में देता हूँ। अब आपको जल्दी है और कपड़ा भी बहुत महँगा है। जो भी देना हो आप दे दीजिएगा साहब।'' गणपत ने विनम्रभाव से कहा।

''ठीक है।'' तुषार बाबू ने भी अपनी दानशीलता का परिचय देते हुए कहा, ''सात हजार देता हूँ। लेकिन काम निश्चित समय पर ही होना चाहिए।''

''बाबू साहब''– गणपत नम्रता से बोला– ''बड़े साहब ने मुम्बई से कपड़ा लेकर भेजा है और मैं वो समय पर नहीं दूँगा। मैं क्या उनका नमक हलाल बनूं। बेइमानी कैसे कर सकता हूँ मैं उनसे।''

''नहीं! नहीं!! मेरा मतलब यह नहीं है।''– तुषार बाबू सतर्कता से बोले, ''बस ऐसे ही कह दिया। तो तुम्हें कुछ अग्रिम राशि की आवश्कता होगी क्या? कितना चाहिए''

गणपत ने कहा, ''हाँ साहब! हमारी यह टूटी-फूटी दुकान है। ऊपर से इस सूट की सिलाई के समय और काम लेना भी बंद कर दूँगा। घर तो चलाना ही है। फिर सूट की सिलाई के लिए सामान खरीदना पड़ेगा। तो पाँच एक हजार तो लग ही जाएगा।''

''नहीं, नहीं। यहाँ का सामान इस सूट में नहीं लगेगा। वह काका साहब ने मुम्बई से खरीद कर भेज दिया है। और कुछ चाहिए तो बोलो वहाँ से मंगवा देंगे। यहाँ का सामान नहीं लगेगा।''– तुषार बाबू ने कहा।

गणपत ने तुषार बाबू के माप कई बार लिए। और बार-बार लिखे। मुम्बई में कपड़े सिलवाने वाले तुषार बाबू को देखकर गणपत बहुत प्रसन्न हुआ। जाते-जाते उन्होंने पाँच हजार की रकम गणपत के एक पैर के लंगड़े कपड़ा काटने के टेबल पर रख दिए और नमस्कार करके चले गए।

मैं देख रहा था। अपने लंगड़े टेबल पर पड़े हुए नोटों की तरफ गणपत अनिमिष भाव से देखता रहा।

उसके चेहरे पर धूर्तता की लहरें उठ रहीं थी।

तुषार बाबू के गणपत की दुकान में आने से उस लाइन की अन्य दुकानों में गणपत की दुकान का आदर बढ़ गया। मुख्यमंत्री के घर शादी के कार्यक्रम के दौरान आते-जाते गणपत गणपत राव बन गया। गणपत की मध्यस्तता से अन्य व्यवसायी लोगों को भी उनके काम में मदद मिल सकती है, ऐसा सोचकर सुनार, बनिये, ट्रैवल्स का धंधा करने वाले सभी गणपत की चाय-पानी की व्यवस्था करने लगे। गणपत की दुकान खुली रहती थी। पर अब वो उसमें नहीं रहता था। सिले हुए कपड़े लटकाने की खूंटियाँ खाली की खाली रहती थी। समय मिलते मैं वहाँ जाकर बैठा रहता था।

उस दिन गणपत की दुकान में मैं बैठा हुआ था। तभी गणपत आया। उसने थोड़ी पी रखी थी। गंध जरा अलग थी। मैंने पूछा, ''टेलर! आज ब्राँड बदल गया है?''

''अरे बाबा'' वह हँसते हुए बोला- ''सब कुछ बदलते जा रहा है। इसको बहुत दिन हो गए। मैं आज बदला। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम सैनिक देशी-देशी करते मर गए पर सब कुछ विदेशी हो गया। विदेशी का मजा ही कुछ और है।''

गणपत अक्सर बाहर ही रहता था। कभी-कभी दुकान में आता था। हाँ! यह तुषार बाबू का सूट देगा कि नहीं इसकी चिंता उन दोनों से ज्यादा मुझे लगी रहती थी।

छः-सात दिन बीत चुके थे। मैं ऐसे ही बैठा था। समय भी वही था जब तुषार बाबू पहली बार आए थे। दूर से ही गाड़ी का हार्न सुनाई पड़ा। गणपत ने पहचाना, चश्मा चढ़ाया और राह देखने लगा।

गाड़ी आई। तुषार बाबू उतरे। उन्होंने सवाल किया- ''क्या टेलर कहाँ तक काम आया?''

''बस कटिंग हो गयी है बाबू साहब। ओवर लॉक के लिए दिया है। यह देखो आपका ही माप देख रहा हूँ। कुछ गलती नहीं होना चाहिए न।'' गणपत ने उनके नाप लिए हुए कागज को सामने किया। तुषार बाबू ने ध्यान से देखा। उन्होंने सिर हिलाया और उसी मुद्रा में उन्होंने मोतीराम को आवाज लगाई। 'जी' कहते हुए मोतीराम सामने आया।

''बहुत गर्मी हो गई है। तीन-चार कोल्ड ड्रिंक लाओ।''

''गाड़ी में है वो दूँ तुषार बाबू।''

''दो-दो।''

मोतीराम ने हमें ठंडा पेय दिया।

तुषारबाबू ने एक दो घूँट लिए और बोतल वैसे ही रख दिया। उनकी शादी थी। बेचारे जल्दी में थे।

चार-छः दिन बाद तुषार बाबू पुनः दुकान पर आए। यह आश्चर्य की बात थी कि जब-जब तुषार बाबू दुकान में आते गणपत दुकान में होता था।

''क्या टेलर कहाँ तक आया।'' उन्होंने पूछा।

''बस बाबू साहब! हो गया ही समझो। काज-बटन और तुरपाई इतना ही बाकी है। फिटिंग के लिए ऐसा शानदार बना है आहा! कि पूछिए मत।''

जैसे अपने आप से बोल रहा था, "वाह! वाह! क्या कपड़ा है बाबू। जिन्दगी में ऐसा कपड़ा कभी देखा नहीं।"

"सच बोलूँ तुषार बाबू इतना अच्छा कपड़ा काटते हुए कैसे जान पर आ रही थी, क्या बताऊँ। पर आपका है यही सोचकर काटा।"

तुषार बाबू प्रसन्न हुए। उन्होंने पीछे घूमकर देखा कि मोतीराम चार-छः कोल्ड ड्रिंक लाकर टेबल पर रख दिया था। उन्होंने बिना बोले ही कोल्ड ड्रिंक की बोतल हमें पकड़ाई। एक दो घूँट लेकर तुषार बाबू वापस हो लिए।

"फिर कब आऊँ ट्रायल के लिए?" तुषार बाबू ने जाते-जाते पूछा।

"ट्रायल?" गणपत तुच्छता से बोला, "तुषार बाबू साहब! गणपत टेलर द्वारा सिले हुए सूट का ट्रायल लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वो सीधा पहना जाता है।"

इस सूट में मैं शादी में कैसा दिखूँगा इसका सपना देखते हुए तुषार बाबू निकल गए।

बाद के दिन शादी की तैयारी के थे। तुषार बाबू व्यस्त रहने लगे। अब सुबह-शाम मोतीराम आने लगा था। अब टेलर के जवाब तैयार थे। काज-बटन के फिनिसिंग के लिए भेजा है। तुरपाई के फिनिसिंग के लिए भेजा है। और आखिर में उसने कह दिया कि इस्त्री के लिए भेज दिया है।

कपड़े सिले तो क्या काटे भी थे या नहीं, यह मुझे मालूम था। गणपत बचे हुए चार दिन में क्या करेगा यह समझ में नहीं आ रहा था। हमारे तरफ हल्दी लग जाने के बाद वर को बाहर घूमने नहीं देते। तुषार बाबू को हल्दी लग गई थी। शादी को तीन दिन बाकी थे। मोतीराम आया। "टेलर" वह झुझंलाते हुए बोला, "तुषार बाबू को हल्दी लग गई है। अब तो सूट दे दो।"

"सूट क्यों?" गणपत ने ठंडी आवाज में कहा।

"कैसे दूँगा- तुषार बाबू का नाप ही नहीं मिल रहा है।"

मोती राम के साथ-साथ मैं भी उछल पड़ा।

तुषार बाबू की शादी हो गई। तुषार बाबू की शादी ससुरालवालों के दिए हुए सूट में हुई।

शादी की बारात वापस आई और दोपहर में गणपत्त अपनी दुकान में चिल्ला-चिल्ला के रो रहा था।

"क्या हुआ?"' दुकान लाइन के लोग पूछने लगे।

हाथ में पड़ा हुआ टेलीग्राम का कागज सिर्फ वो दिखाता था और 'माँ-माँ' करके चिल्लाते हुए जोर-जोर से रोने लगता था।

पड़ोसियों ने उसकी दुकान बन्द की और उसे उसके घर पहुँचाया। मैं साथ ही था। वैसा ही एक टेलीग्राम उसके घर में भी पहुँचा था। सब लोग दयालु थे। गणपत अपना कुटुंब-कबीला लेकर माँ के अन्तिम संस्कार के लिए गाँव चला गया।

गणपत वापस आया तो उसका सिर मुड़ा हुआ था। इधर तुषार बाबू 'हनीमून' के लिए बाहर चले गए थे। गणपत तुषार बाबू के पिताजी से मिला। उसने तुषार बाबू के पिता को नमस्कार किया जिसमें माफी माँगने का भाव भी छुपा हुआ था। उसने माँ की मौत से हुए दुःख और साथ ही खर्च और कर्ज का आँकड़ा भी बताया। पिताजी को दया आई। शादी वाले घर में रोना-धोना उन्हें अच्छा नहीं लगा। गणपत को बचे हुए दो हजार रुपए मिल गए। गणपत ने खर्च का आकड़ा बता दिया। इतने दिन घर बन्द रहने के कारण कोट का कपड़ा चूहों ने काट दिया था। गणपत वहाँ से चलता बना।

पन्द्रह दिन बाद गणपत की लड़की की शादी हुई। अपने गाँव से मैं अकेला ही इस शादी में शामिल था।

"सिलाई के सात हजार और कपड़े के तेरह हजार इस तरह बीस हजार इकट्ठा करके मैंने यह शादी निपटाई।"–यह बात गणपत ने मुझे अकेले में बताई। इसके आगे की बात मैंने आज तक किसी को नहीं बताई है।

बंजारा लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

■ डॉ. आर. रमेश आर्य

बंजारा लोक संस्कृति का आधार उसके मूल रूप में धर्मानुष्ठान रहा है। राजस्थान के नीतिपरक सुसंस्कृत जीवन से आलोकित बंजारे जहाँ भी गये, अपने संस्कारों में आबद्ध रहे। दूर - सुदूर प्रदेशों में भी उनके लोकगीतों में उनके संस्कार आचार-विचार, पारस्परिक - व्यवहार और भावनाओं में कोई व्यवधान या परिवर्तन नहीं आया। बंजारे अपनी यात्राओं में, अपने संस्कारों, लोकगीतों, लोकनृत्यों, और लोकतीर्थों से अपनी संस्कृति की पहचान बनाए रखने में सफल हुए। युगों से उनके यायावरी जीवन में भी कोई बदलाव नहीं आया किन्तु समय-समय पर स्थानीय आचार-विचारों का किंचित प्रभाव वे ग्रहण अवश्य करते रहे हैं। उनकी संस्कृति के साथ उनके लोक-गीतों, लोक-कथाओं में लोक-नाट्य, लोक-कला, लोक-संगीत, आदि अक्षुण्ण प्रवाह बना रहा है। इससे उनकी जाति स्मृति, जाति की पहचान और संस्कृति की एक अलग धारा आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, गोवा, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और मध्यप्रदेश में बहती रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत के आदिवासियों में उनके लोक-नृत्य, लोक-संगीत और भाषा-वेशभूषा से उनकी अलग-अलग पहचान बन गई है किन्तु बंजारा जाति ने अपनी पहचान जीवटता, अभाव ग्रस्तता और एकान्तिक संस्कृति से अक्षुण्ण बना रखी है। राजस्थान से दूर प्रदेशों में, स्थान-स्थान पर उनके पड़ाव बनते गए। उन्होंने अपने टाँडों (बस्ती) को बाह्य प्रभावों से मुक्त रखा किन्तु आस-पास के टाँडों से पारस्परिक अटूट सम्बन्ध भी बनाए रखा। सुरक्षा और सामाजिक बन्धनों के कारण दूर-दूर के अँचलों और टाँडों में भी एकसूत्रता और आत्मीयता बनी रही। आँध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में, राष्ट्रीय मार्गों के समीपस्थ अँचलों में बंजारों के टाँडे अवस्थित हैं। बंजारों की एक जाति गोर या चारण नाम से अभिहित है। यह जाति राजस्थान में चारण, महाराष्ट्र में गोर बंजारा, मध्यप्रदेश में बंजारा, आँध्रप्रदेश में लम्बाडी, सुगानी तथा तेलंगाना और कर्नाटक में लम्बाड़ा कहलाती है। स्थानीय लोक-संस्कृति का इन अंचलों में अवस्थित बंजारों के लोकमानस पर एक विशिष्ट संस्कृति की अमिट छाप छोड़ती रही है। वहाँ की परिस्थितियों, भाषा और भौगोलिक स्थितियों का प्रभाव उन पर पड़ता रहा है। इसीलिए उनकी परम्पराओं और रूढ़ियों में स्थानीय मिट्टी की गंध मिलती है।

बंजारों के जीवन और सामाजिक यथार्थ का चित्रण उनके लोक-गीतों में व्यक्त हुआ है, क्योंकि इनका कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। वस्तुत: बंजारों के श्रमशील जीवट स्थितियों, सक्रिय सामाजिक संघर्षों और प्रकृति-जन्य विषमताओं के बीच उनके कंठों से जो कुछ फूटा है, वही उनके लोकगीत हैं। उनकी रूढ़ियों, परम्पराओं, अनुभव और विचार के अतिरिक्त उनके तंत्र-मंत्र और मानसिक स्थितियों ने भी असंख्य लोकगीतों का निर्माण किया है। ये लोकगीत बंजारों की मानसिक भावात्मक चेतना की अनायास अभिव्यक्ति हैं। मानव-जीवन की विकास-यात्रा में अनेक संस्कारों, अनुष्ठानों, व्रत-पूजा और धार्मिक-नैतिक परम्पराओं का उद्‌भव हुआ किन्तु आदिवासियों में केवल जन्म, विवाह और मरण - तीन प्रमुख कर्म हैं, जिनके प्रति उनकी अधिकतर भावनाएँ लोकगीतों में अभिव्यक्त होती हैं। बंजारा जाति एक अभावग्रस्त जाति है जिसकी अपनी समृद्ध संस्कृति है। बंजारों के कुछ गोत्र -पाड़े, वेशभूषा, रीति-रिवाज राजपूतों से मिलते-जुलते है। बंजारों के जातीय वर्ग तीन प्रकार के हैं - (1) गोर बंजारा या चारण, (2) ढाड़ी, नाई, ढालिया, सुनार आदि, (3) मथुरा या मथुरासी, ओस्लीया, भाख, मुकेरी, मुलतानी आदि। महाराष्ट्र और आँध्रप्रदेश के निजामाबाद और अदिलाबाद के टाँडो में मथुरासी बंजारे स्थायी रूप से बस गए हैं। वस्तुत: बंजारों के टाँडे स्वतंत्र और आत्म-निर्भर हैं। सुनार, नाई, ढालिया (ढ़ोल बजाने वाले) और ढाड़ी (गायक) आदि व्यावसायिक लोगों के कारण इनके टाँडे सम्पन्न हैं। इनके पास आज पालतू पशु हैं जिनसे इनकी जीवनचर्या में कृषि, पशुपालन और व्यवसाय प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुत: पुराने जमाने में इनके पास बैलों, गायों के अतिरिक्त घोड़े, गर्दभ आदि पशु भी थे, जिससे लदेणी (लादने) का कार्य

चलता था।

आज बंजारा जाति अपने अँचलों में इस तरह बस गयी है कि लदेणी का कार्य पूर्ण रूप से समाप्त हो गया है। उनके सामाजिक जीवन में स्थिरता आ गई। सरकारी सहयोग से सामाजिक विकास में इनकी शिक्षा, उद्योग, सरकारी नौकरी की और अधिक ध्यान दिया जा रहा है। अनुसूचित जातियों के आरक्षण के कारण लम्बाड़ा जाति के अनेक शिक्षित युवक-युवतियाँ उच्च सरकारी पदों पर कार्यरत हैं। शहरी जीवन अपनाने पर भी इनकी जीवन -दृष्टि अपनी सांस्कृतिक धरोहर, परम्परा और रूढ़ियों से अलग नहीं हुई है। वे अपने आचार-विचार संस्कार की रक्षा करते हैं। जन्म-मरण, विवाह आदि अवसरों पर इनके लोकगीतों की गूँज इनके अँचलों में सुनाई देती है। इनके जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। आज भी अपनी वेश-भूषा में सुसज्जित वे आए दिन सामूहिक नृत्य-गान करते रहते हैं। संस्कारों और पर्वों आदि विशेष अवसरों पर इनके अँचलों में लोकप्रिय लोकगीत प्रतिध्वनित होते रहते हैं।

बंजारों के पर्वों के समय गाये जाने वाले इनके लोक-गीतों में भक्ति और श्रद्धा ही देखी जा सकती है। जन्म और विवाह के अवसरों पर असंख्य उल्लासित लोक कंठों से इनकी प्रसन्नता और खुशी देखने को मिलती है। इनके संस्कारों में वेदमंत्र नहीं पढ़े जाते हैं। सभी संस्कार लोक-गीतों से ही सम्पन्न किए जाते हैं। वस्तुतः बंजारा अपनी अस्मिता, गौरव और लोक-संस्कृति से उत्प्रेरित रहता आया है। इसलिए इनके लोकगीत उनके लोक-मानस का प्रतीक बन गए हैं। मृत्यु के अवसर पर उनके करुण लोकगीतों में मृत्यु के रहस्य और जीवन समापन के गूढ़ भावों का बोध होता है। बंजारों के लोक-मानस की अभिव्यक्ति जितनी प्रखर रूप से उनके लोकगीतों में होती है, वह दीर्घकालीन रूढ़िगत परम्पराओं और संस्कारों को स्पष्ट करती है। यद्यपि भारत की अनेक अनुसूचित जातियों में कुछ आदिम जातियाँ हैं तो कुछ ऐतिहासिक-भौगोलिक परिस्थितियों से उत्पन्न हैं। बंजारा जाति वस्तुतः ऐतिहासिक-भौगोलिक परिस्थितियों से उत्पन्न हैं। एतद्‌र्थ उनमें सुनिश्चित सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक-नैतिक, पूजा-व्रतादि के संकल्पित अनुष्ठान, जन्म-मरण, विवाह के विधिवत संस्कार परिलक्षित होते हैं तथा अनेक देवी-देवता और साधु-सन्त के प्रति कृतज्ञ भाव रखते हैं।

बंजारा जाति में भारतीय राजस्थानी संस्कृति का प्रवाह प्रारम्भ से लेकर आज तक अटूट रहा है। अनेक शताब्दियाँ व्यतीत हो चलीं किन्तु राजस्थान से प्रारम्भ हुई इस संस्कृति की परम्परा आज भी सम्पूर्ण भारत भूमि में अक्षुण्ण बनी हुई है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रबल प्रमाण हैं। अतएव बंजारा संस्कृति दीर्घजीवी सिद्ध हुई है। जीवन के विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले विभिन्न संस्कारों में से तीन संस्कार आज भी विधि-विधानपूर्वक किए जाते हैं। सदियों की दयनीय जीवन पद्धति, अभाव-ग्रस्तता और आर्थिक विषमता के कारण बंजारों ने अपने आत्मनिर्भर जीवन को लोकगीतों के मधुरिम माध्यम से संजोया है, उनकी गूंजों से अपने दुःख-दर्द को भुलाया है और इनकी लय में अनायास आनन्द की अनुभूति की है। इन्हीं जीवन्त लोकगीतों के आधार पर सम्पूर्ण बंजारा समाज का इतिहास मूर्तिमान हो उठता है तथा लोक-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन इन्हीं पर अधिष्ठित है।

एक बंजारा जातीय स्मृति लोकगीत

''जागो गोर भाई सूते नींदे मांई
कन्ना जागछः नींद तमार रे
जाग उठो से बणजारा ।। टेक ।।
राठोड, चव्वाण, पम्मार, जाधव
राजपूत जात हमारी
पृथ्विराज, अमर संग, राणाप्रताप
वोभिथे बळधारी
वो बळधारी धूजा जगसारी
दशमण गे से हार रे ।। जाग उठो ।।
सारी जगेमा गोर हमारे
बणगे वणद वेपारी
लाखो खण्डि भरदाणा दनियाँ माँ
पून्चा ये जगती माँ सारी ।। जाग उठो ।।
वो सख पाये धन से कमाये
लाखूंरी किदे वेपार रे ।। जाग उठो ।।
देखो जगेमा आज हमारी
जात घण पड़ जारी
हुन्नरविद्या सिखो से भाई
जाग उठो से नर नारी ।। जाग उठो ।।
जागो गोर भाई सूते नीदे माँई
कन्ना जागछः नींद तमार रे
जाग उठो से बणजारा''

(यह गीत श्री मनीरामजी राठौड़, बंजारा गीतमाला के सौजन्य से प्राप्त)

■

जनजातीय समाज की आवासीय व्यवस्था-पाठा के विशेष सन्दर्भ में

■ डॉ. बलराम

अधिवास मानव द्वारा निर्मित सांस्कृतिक भू-दृश्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में किसी भी क्षेत्र की वास्तविक सामजिक एवं आर्थिक स्थिति के परिचायक होते हैं। विश्व की अधिकांश जनसंख्या गाँवों एवं मलिन बस्तियों में निवास करती है जहाँ पर आवासीय असुविधाओं के अतिरिक्त शुद्ध पेयजल एवं शुद्ध वायु भी दुर्लभ होती जा रही है।

भारत के विभिन्न प्रदेशों के कुछ क्षेत्रों में जनजातियाँ निवास करती हैं। मानव समाज के अन्तर्गत सांस्कृतिक परम्पराओं के विचार से इनका महत्वपूर्ण स्थान है। ये जनजातियाँ कठोर भौगोलिक परिस्थितियों में रहते हुए अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत को जीवन्त किये हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में आवासीय व्यवस्था का अध्ययन अत्यधिक विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक ढंग से किया जाना नितान्त आवश्यक है। यह अध्ययन किसी विशिष्ट विधा का एकाधिकारी नहीं अपितु एकमात्र कड़ी है। अधिवास किसी भी समाज एवं जाति विशेष की आवश्यकताओं को निरूपित करते हैं साथ ही साथ आर्थिक, सामाजिक, मानसिक एंव भौतिक विकास की प्रक्रिया के साथ संघटित होते हैं। अतः जनजातीय समाज की आवासीय व्यवस्था पर किया गया कोई भी प्रयत्न निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रहरहित होना चाहिए। यदि इसमें यत्किंचित भी व्यष्टिवाद प्रभावी होता है तो वह उनके सार्वभौमिकता की विशिष्टता को विद्रूप कर देता है।

प्रस्तुत लेख में पाठा क्षेत्र के जनजातीय समूह, जिन्हें कोल जनजाति के नाम से जाना एवं पुकारा जाता है, की आवासीय व्यवस्था का भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कोलों के परम्परागत अधिवासीय स्वरूप, आवास निर्माण सामग्री, आवासीय व्यवस्था में हो रहे परिवर्तन, शासकीय कालोनियों के प्रति कोलों की रुझान एवं दृष्टिकोण तथा आवासीय व्यवस्था पर सुधार की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है।

भारत जैसे विशाल जनतांत्रिक देश में जनजातियों की संख्या लगभग 5.5 करोड़ के आसपास है। ये जनजातियाँ पर्वतीय, पठारी एवं दुर्गम वनीय क्षेत्रों तक ही सीमित हैं। कोल जनजाति मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश राज्यों में पायी जाती है। मानवशास्त्रियों के अनुसार उत्तर प्रदेश की जनजातीय जनसंख्या की तुलना में 25 प्रतिशत जनसंख्या कोलों की है जो अन्य जनजातियों की तुलना में कहीं अधिक है। उत्तर प्रदेश राज्य में यह जाति वाराणसी, मिर्जापुर, इलाहाबाद, बांदा एवं चित्रकूट जनपदों में निवास करती है। कोलों को उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों में जनजाति का दर्जा प्राप्त है जबकि उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।

परम्परागत अधिवासीय व्यवस्था

घुमन्तू प्रवृत्ति होने के कारण कोलों का एक ही स्थान पर स्थाई रूप से आवास बनाकर बना रहना असम्भव सा रहा है। अस्थाई आवासों के निर्माण का प्रमुख कारण अधिक से अधिक घूम फिर कर बनोत्पाद एकत्र करना रहा है। वर्तमान समय में कोलों की परिस्थितियों में बदलाव आया है। अतः पुरानी बस्तियों को छोड़कर नयी बस्तियों के निर्माण में इनकी रुचि कम हुई है। इसके अतिरिक्त आवास स्थल के चयन में भी सामाजिक नियम तथा कानून में परिवर्तन हुआ है। आवास निर्माण के पूर्व स्थल चयन में परिवार या कोल समाज के मुखिया का सहमत होना आवश्यक होता है। क्योंकि स्थल की शुद्धता एवं सुरक्षा पर सवाल उठाये जाने लगे हैं। मकान निर्माण के पूर्व अराध्य देव की पूजा-अर्चना की जाती

है। निर्माण कार्य के समय अन्य लोगों से मदद नहीं ली जाती है। कोलों के एक-एक झोपड़े मिलकर एक बस्ती का स्वरूप ले लेते हैं। ऐसी बस्तियों में जल निकासी का पूर्ण अभाव रहता है। पतली-पतली गलियों एवं पगडंडियों से चलकर कोल अपनी गतिशीलता प्राप्त करते हैं। बस्ती के मध्य भाग में खुली जगह पर किसी वृक्ष के समीप अराध्य देव की स्थापना होती है। इनकी झोपड़ियाँ ऊँचाई वाले भू-भागों में निर्मित की जाती है। प्रत्येक झोपड़ी आपस में एक-दूसरे से मिली हुई होती है। एक बस्ती के स्वरूप को 'कोलान' कहा जाता है। मध्य भाग पर स्थित खुले हुए भाग को आँगन कहा जाता है, जिसमें उस बस्ती के सभी कोलों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ एवं कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

पाठा क्षेत्र के जनजातीय कोलों की बस्तियाँ एक समान नहीं हैं और न ही एक स्वरूप वाले भू-भाग पर स्थित हैं। स्थलीय चयन, रहन-सहन का स्तर, कृषि कार्य, खनन कार्य में संलग्नता, वाणिज्य एवं व्यापार में दैनिक मजदूरी का कार्य, वनोत्पाद एकत्र करना, लकड़ी काटना आदि कार्यों में सहभागिता के कारण अलग-अलग क्षेत्रों में कोलान स्थित हैं। अवस्थिति के आधार पर इनके कोलानों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. वनीय क्षेत्रों में स्थित कोलान

ऐसे अधिवासों के अन्तर्गत उन कोलानों को सम्मिलित किया जा सकता है जो जंगलों, दुरूह घाटियों के मध्य में स्थित है। ऐसी बस्तियों में कोलों के अतिरिक्त अन्य जाति एवं समाज के लोगों के आवास नहीं होते हैं। ये बस्तियाँ पूर्णरूपेण 'एक जातीय' होती है। अत: ऐसे अधिवासों को स्वजातीय एवं एक ही सांस्कृतिक समरूपता वाले कोलानों की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें निवास करने वाले कोल वन उपज, लकड़ी काटने, व्यवसाय आदि पर निर्भर रह कर अपना जीविकोपार्जन करते हैं। मानिकपुर विकास खण्ड के इटवा डुडैला तथा टिकरिया नामक कोलान इसके प्रमुख़ उदाहरण हैं।

2. मार्गों के समीप स्थित कोलान

इस प्रकार के अधिवासों में कोलों के अतिरिक्त अन्य जातियों एवं समुदाय के लोग निवास करते हैं। ऐसी बस्तियाँ पहुँच मार्गों के समीप स्थित हैं। जनसंख्या के आधार पर कुछ बस्तियों में कोलों की संख्या का प्रतिशतांक अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक है। यहाँ के निवासियों (कोलों के अतिरिक्त) का मुख्य धन्धा कृषि कार्य एवं ठेकेदारी है जबकि कोलों की सहभागिता कृषक मजदूर, खनन मजदूर एवं वनोत्पाद संग्रह मजदूरों (तेंदू के पत्ते तोड़ना एवं उनको एकत्र करना) की होती है। कुछ कोल परिवार कृषि का भी कार्य करते हैं। लेकिन इनकी गणना लघु कृषक के रूप में की जाती है। ऐसी बस्तियों में गाँव के दक्षिणी या उत्तरी भागों में कोलों के आवास, 'कोलान' स्थित है। उदाहरणार्य-पटा, उमरी, खरौंध तथा कलचिहा।

3. नगरीय या कस्बाई क्षेत्रों के समीप स्थित कोलान

पाठा क्षेत्र के छोटे-छोटे नगरों एवं कस्बों के समीप भी कोलान पाये जाते हैं। इनके कोलान नगर या कस्बे के मध्य भाग में न स्थित होकर अलग से बने होते हैं। स्थानीय लोगों द्वारा जाति विशेष की बस्तियाँ होने के कारण 'कोलान' कहकर ही पुकारा जाता है। इन अधिवासों में निवास करने वाले कोलों के आवास, वनीय क्षेत्रों में बने कोलानों से कुछ अच्छी स्थिति में होते हैं। आवास के निर्माण में ईंट, पत्थरों आदि का प्रयोग किया जाता है। यहाँ के कोलों को आसानी से दैनिक मजदूरी का कार्य मिल जाता है। अत: जागरूकता के साथ कुछ आर्थिक स्थिति भी मजबूत होती है।

आवासों में प्रयुक्त निर्माण सामग्री

कोल अपने आवासों के निर्माण में उपलब्ध स्थानीय निर्माण सामग्री का प्रयोग करते हैं। इसके अन्तर्गत लकड़ी, बांस एवं वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाली लम्बी घासों का उपयोग किया जाता है। दीवारों का निर्माण बाँस की फंट्टियाँ तथा घास भर कर किया जाता है। बाँस एवं लकड़ी से निर्मित ऐसी दीवारों पर कीचड़, मिट्टी एवं घास-फूस का मिश्रण बनाकर लेप किया जाता है। झोपड़ी की छतें घासों की छप्पर डालकर बनाई जाती हैं। 'कोलान' का आकार अंग्रेजी के 'U' अक्षर के समान होता है। झोपड़ियों का निर्माण अधिकांशत: वर्षा ऋतु के बाद ही किया जाता है, क्योंकि लम्बी घासें आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं।

वर्तमान समय में कोलानों में प्रयुक्त होने वाली

निर्माण सामग्री में परिवर्तन आने लगा है। पठारी क्षेत्र होने के कारण पत्थर आसानी से उपलब्ध होता है। अत: दीवारों का निर्माण पत्थरों से किया जाने लगा है। छतों का निर्माण लकड़ी की छटावन आदि से ही किया जाता है। यह परिवर्तन नगरीय एवं कस्बाई क्षेत्र के निवासियों के अनुसरण एवं स्थायित्व का परिणाम है। जिन क्षेत्रों में राजस्व विभाग द्वारा कृषि कार्य हेतु पट्टों का आबंटन किया गया है और कोलों को कब्जा मिल गया है वहाँ के कोलों ने पक्के मकानों का निर्माण कर लिया है और कृषि कार्य में संलग्न देखे जा सकते हैं।

जहाँ एक ओर पर्यावरणीय प्रभाव के कारण अदिम समाज की परम्परागत बसायत (कोलान) का स्वरूप परिवर्तित हुआ है, वहीं दूसरी ओर इनके कोलानों का स्वरूप प्रभुत्व सम्पन्न समाज के बसायत, गाँवों, कस्बों एवं नगरों में धीरे-धीरे समाहित हो रहे हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि शासकीय अधिकारी, कर्मचारी, स्वयं सेवी संस्थाओं के संचालकों एवं सभ्य समाज के व्यक्ति इन्हें वैज्ञानिक युग की धारा से जोड़ें। इनके आवासीय व्यवस्था के सुधार हेतु निम्न कदम उठाये जा सकते हैं-

1. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संचालित आवासीय योजना के अन्तर्गत इन्दिरा आवासों का निर्माण कराया गया है, किन्तु कोल इन आवासों में रहने के लिए उत्साहित नहीं हैं। कोलों की यह मान्यता है कि इन आवासों में घटिया किस्म की सामग्री का प्रयोग किया गया है। आवासों में दरवाजे नहीं हैं, छत किसी भी समय टूट सकती है।

उक्त समस्या के समाधान हेतु जब भी कोलानों का निर्माण कराया जाय, निर्माण कर्मचारियों के साथ कोलों के कुछ सदस्यों की सहभागिता सुनिश्चित की जाए या निर्माण सामग्री उपलब्ध कराकर किसी कर्मचारी या अधिकारी की देख-रेख में कोलानों का निर्माण कराया जाए। ऐसा करने से कोलों के अन्दर भय और संशय की स्थिति को समाप्त करने में सहायता मिलेगी। पूर्व में निर्मित कोलानों का रख-रखाव एवं मरम्मत का कार्य कर इन कोलानों को रहने योग्य बनाया जाए।

2. दुर्गमवनीय क्षेत्रों के कोलानों में निवास करने वाले कोलों की वनोत्पाज एवं खनन कार्य में सहभागिता सुनिश्चित की जाए। मालिकाना हक प्राप्त होने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति सृदृढ़ होगी, फलस्वरूप उनके आवास निर्माण में इसका प्रभाव परिलक्षित होगा।

3. वर्तमान समय में जिन कोलानों के स्वरूप को परिवर्तित नही किया जा सकता है, उनमें मूलभूत सुविधाएं मुहैया करायी जा सकती हैं। नालियों का विकास करके, गलियों को चौड़ा करके, पीने का पानी उपलब्ध कराने हेतु हैण्डपम्पों एवं टैंकों का निर्माण कराकर इन कोलानों की खराब स्थिति को सुधारा जा सकता है

4. पाठा क्षेत्र में समय-समय पर संगोष्ठियाँ करके स्वयं सेवी संस्थाओं को आवासों, नालियों, एवं सफाई की जानकारी उपलब्ध कराने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य, टीकाकरण, शिक्षा, कृषि कार्य आदि के जागरण अभियानों को आयोजित किया जाना चाहिए। उक्त कार्य करके कोलों को स्थाई रूप से आवासित करने, आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के साथ ही साथ विकास की मुख्य धारा में जोड़ा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. *Hasan, Amir: A Socio-Economic Study of Banda Kolins, Social Welfare, New Delhi, April 1967.*
2. *नाग, जसबन्त:- पाठा के कोलों में राजनीतिक चेतना एवं सहभागिता, शोध प्रबन्ध, काशी विद्यापीठ, 1989*
3. *डोगरा, भारत:- पाठा, सूखे खेत प्यासे दिल (समाज के कमजोर तबके को संसाधनों से वंचित रखने व उनके शोषण पर एक रिपोर्ट, पाठा क्षेत्र के सन्दर्भ में), 1991*
4. *अमर उजाला 6, नवम्बर 1997, कानपुर - समस्याओं को लेकर कोल उपवास पर बैठे।*
5. *अमर उजाला 8, नवम्बर 1997, कानपुर - पाठा के कोल आवासों के घपलों की जाँच होगी।*
6. *नाग, सुधा:- आदिवासी कोल महिलाएँ (1998) म. गाँधी वि.पी., वाराणसी*
7. *स्वामी प्रसाद:- कोल जनजाति के विकास के अवरोधक कारकों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, पाठा क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में बु.वि. विद्यालय, झांसी, 1998*

भूख उनकी नहीं नौकरशाहों की है

■ डॉ. सुनीता शर्मा / अमरेंद्र किशोर

आदिवासी समाज में हो रही भुखमरी की खबरें अब आमबात हो चुकी हैं। ये न तो अब राष्ट्र की आत्मा को झकझोरती हैं और न ही किसी प्रधानमंत्री को प्रभावित इलाके में औचक यात्रा करने को विवश करती हैं। अब तो भुखमरी की बातें पत्रकारिता के परिवृत्त में सिमटकर रह जाती हैं या यदा-कदा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के जाँच के दायरे में रखी जाती हैं। भूख और भूख से बिलबिलाकर मरनेवाले लोगों की संख्या हर साल बढ़ती जा रही है–जाँच, स्पष्टीकरण और खंडन, मानों ये सब मरने वालों के श्राद्धकर्म से जुड़े अनुष्ठान का रूप ले चुके हैं। कभी पलामू (झारखण्ड) तो कभी कैमूर (बिहार) और कभी सुंदरगढ़ (उड़ीसा)–हर साल कुछ नए जगहों के नाम जुड़ते हैं।

इन दिनों राजस्थान का बारन इलाका चर्चाओं में है। जैसे पिछले साल उड़ीसा में आम की गुठलियाँ खाकर कई लोग बीमार पड़े और उनमें से कई मर भी गए। वैसे ही इस साल भूख के दानवी पंजों में पूर्वी राजस्थान के वे लोग आये हैं जो या तो दलित हैं या आदिवासी। इन समुदायों में मरनेवाले लोगों की संख्या पाँच दर्जन से कहीं ज्यादा है। यह सिलसिला अभी जारी है। एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रिका 'द वीक' की संवाददाता निस्तुला हेब्बर ने उस इलाके का दौरा करने के बाद लिखा है कि भूख से मरनेवाले लोग चमार जाति के हैं या सहारिया आदिवासी। ये भूमिहीन लोग हैं। क्योंकि इस साल वहाँ बारिश नहीं हुई, अत: खेत बंजर में तब्दील हो चुके हैं और अनाज की कमी से इंसानी जिंदगी की साँस उखड़ने लगी है।

मध्य प्रदेश और राजस्थान के सीमावर्ती जिलों में करीब पाँच साल से बारिश सही ढंग से नहीं हुई है। स्थिति इतनी भयावह हो चुकी है कि लोग सालों साल से बाजरे की रोटी खाना भूल गए है। अब उनके नसीब में मौत का अस्तित्व अपने पाँव पसारने लगा तो प्रजातांत्रिक देश के ये रहवासी जंगलों में जाने को विवश हुए। इतना ही नहीं अपने गाँब घर से दूर ये भूखे जन सतत भटकाव में तरह-तरह के समझौते के लिए बाध्य हुए। इतिहास में दूसरी मरतबा राजस्थान के मूल वाशिंदे घास की रोटियाँ खाने के लिए बाध्य हुए। तब अकबर के जमाने में मुगलिया शासन के दुश्मन बने राणा प्रताप ने जंगलों में घास की रोटियाँ खायी थीं। पर बेचारे ये सहारिया तो आजाद मुल्क के तटस्थ मगर शोषित समुदाय हैं जो लोकतंत्र में गहरी आस्था रखते हैं। उनका दोष क्या है- यह बात न उनकी समझ में आयी और न देश के अन्य लोगों की।

भारत के कानूनी-सांवैधानिक प्रावधानों से वे लोग बिल्कुल जुदा हैं, जो लोग भूख से मरते हैं। वे भारतीय जरूर हैं परंतु भारत की व्यवस्था और उस व्यवस्था के प्रावधान उसकी आश्वस्तियाँ और संविधान में वर्णित सुविधाएँ उनके लिए नहीं हैं। अब एक बार फिर चलें राजस्थान के उन गाँवों में, जहाँ लोग अनाज और सरकारी सुविधाओं के नहीं मिलने से पहले कुपोषण और फिर दुर्बलता की गिरफ्त में आकर मर जाते हैं। आश्चर्य है कि आजादी के इतने सालों बाद भी भूख की समस्या वहाँ क्यों गहराई है और राज्य व केंद्र सरकारें कारगर कदम उठाकर लोगों को मरने से बचा पाने में पूरी तरह असमर्थ क्यों रही है। यह सच है कि वे भूभाग पहले जैसे थे आज भी वैसे हैं। न पीने को पर्याप्त पानी और न-ही

सिचाई की समुचित व्यवस्था–जैसे सरकार और व्यवस्था नाम की कोई चीज वहाँ है नहीं। ऐसी सुविधाएँ मुहैया करनेवाले सरकारी विभाग और अधिकरण कुछ लोगों के कुनबे के अलावा कुछ भी नहीं है, उनका जनता से कोई सरोकार नहीं है।

सुदूरवर्ती गाँवों में अन्न-जल के अभाव में लोग मर रहे हैं। ये सारी मौतें निश्चित तौर से 'भूख से हुई मौत' की श्रेणी में आती हैं –सरकार या उनके नौकरशाह यह बात मानें या न मानें। क्योंकि प्रशासन की यह आदत है कि भूखे मरे लोगों के पोस्टमार्टम-रिपोर्ट और भुखमरी की परिभाषा के बीच अंतर दिखाकर सचाई पर पर्दे डालती है। हालांकि वह मन से यह बात स्वीकार करती है कि राजस्थान के नट्टू की बिटिया की मौत भूख से तड़पकर ही हुई है। नाथ महोदरी गाँव में चार आदिवासी बच्चे, मुंदियार में तीन बच्चे और दस बच्चे सँवांश में दाने-दाने के लिए तरस कर मर गए। पर खाद्य और उपभोक्ता मामलों के केंद्रीय मंत्री ने इन खबरों को झूठ और आधारहीन कहा। जिस समय राजस्थान के चमार और सहारिया समाज से 50 से अधिक लोगों की अर्थियाँ अन्न के अभाव में उठ चुकी थीं अपने देश के केंद्रीय जनजातीय मामलों के मंत्री एक राष्ट्रीय दैनिक के जरिए यह वादा समूचे देश से कर रहे थे कि किसी को भूख से मरने नहीं दिया जाएगा। जबकि उनके इलाके सुंदरगढ़ में सालों-साल से लोग भूख से मर रहे हैं। घोषणाएँ, वादे और दावों की जुगाली करने वाले राजनीति के ये श्रीमंत संभवत: ऐसी समस्याओं पर अपने विचारों से आहत को राहत देने में विश्वास रखते हैं, समस्याओं की जड़ में नहीं जाते।

आदिवासियों के दिन एक बार फिर से बहुरे – इसके लिए वर्तमान सरकार में जनजातीय मामलों से संबंधित एक मंत्रालय अस्तित्व में लाया गया। यह खुद बेहद दिग्भ्रमित, विवेकहीन और शिथिलता जैसी स्थिति में गुजरकर वन्य समाज को लाभ कम तकलीफें ज्यादा पहुँचा रही हैं। राजस्थान से सूखे संबंधित खबरों को बेबुनियाद बताने वाली आज की सरकारें क्या यह बता सकती हैं कि वहाँ मानवनिर्मित ऐसे कोई उपाय हैं जो लोगों को साल भर अनाज और पानी मुहैया करवा सके। लोग इनके दर्द को भी इस दलील के साथ नकारते हैं कि सरकार ने तो सुविधाओं-प्रावधानों से इन आदिवासी-हरिजनों को संपन्न कर रखा है। आज वे किस हद तक उन सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं यह बता पाना मुश्किल है पर इतना तो स्पष्ट है कि वोटों की सौदागरी ने हमें बड़ा बेशर्म, बेहया और निर्लज्ज बना दिया है। हम सत्ता के गर्भगृह में बैठकर 'काम के बदले अनाज' - 'जवाहर रोजगार योजना' से लेकर राजीव गाँधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के उद्देश्यों और उनकी उपलब्धियों की चर्चा करने के साथ-साथ कोरी आश्वस्तियाँ उड़ेल-उड़ेलकर भूखे-प्यासे जनों की उम्मीद जगाते हैं कि बस सुविधाएँ आप तक पहुँचने ही वाली हैं।

मतलब, वोटतंत्र में विश्वास उलीचने वालों! आपने जैसे पचपन साल इंतजार किया, सब्र रखा कि गाँवों-देहातों में पानी-अनाज और जीने की हकदारी के तमाम विकल्प व उपाय पहुँचेंगे, जरूर पहुँचेंगे; वैसे ही थोड़े सालों की कुछ और प्रतीक्षा करें। वह जमाना आयेगा जब विकास के नक्शे पर उड़ीसा-झारखंड-राजस्थान की भद्दी तस्वीरें नहीं उभरेंगी। झूठे वायदों और तसल्ली में दिग्भ्रमित कर देश के नेता और नौकरशाह उभरती चुनौतियों से बेपरवाह होते जा रहे हैं। वे तत्काल की समस्याओं पर आतंक के पर्दे डालते हैं मगर ये समस्याएँ लगातार गहराती जा रही हैं। भूख को नजरअंदाज करने वाली यह व्यवस्था भुखमरी को आधारहीन भले ही ठहरा दे पर राजस्थान के सहारिया समुदाय को बड़े भयावह सच का सामना करना पड़ रहा है।

क्या भुखमरी शर्म का प्रसंग है या रहस्यमयी रोग इस आजाद देश की (लचर-लुंज-पुंज) स्वास्थ्य सेवा पर एक सवालिया निशान है। प्रश्न है कि कृषि-अनाज-रोजगार और आवास से जुड़े दर्जनों कार्यक्रमों-परियोजनाओं एवं देश-विदेश की न जाने कितनी दाता संस्थाओं के अस्तित्व में रहने के बावजूद ममूनी गाँव (राजस्थान) के लोग साल के आठ महीने साँवा जैसे मोटे अनाज क्यों खाते हैं? फंग जैसे घास को खाने की आदत उन सहारिया बंधुओं ने क्यों डाली? सार्वजनिक वितरण प्रणाली की हालात सुदूर देहातों में कैसी है? यदि वहाँ अनाज है तो क्या जनता की जेब में इतने पैसे हैं कि वह आसानी से उन पी.डी.एस. दूकानों से अनाज खरीद सकें? क्या उन गाँवों में राहत से जुड़े कार्यक्रम पंचायत के हाथों में सौंपे गए हैं या बी.ड़ी.ओ. (ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर) और एस.डी.एम.

(सबडिविजनल मजिस्ट्रेट) जैसे शुंभों-निशुंभों के पास ऐसे कार्यक्रम बंधक होते हैं? क्या आँगनबाड़ी संस्था के पास पर्याप्त मात्रा में अनाज भेजे जाते हैं? क्या जनस्वास्थ्य सेवा अस्तित्व में है? और, काम के बदले अनाज कार्यक्रम में कितने दलाल चिपके हुए हैं – सांसदजी के दलाल, विधायक जी के 'आदमी' और न जाने कितने मुखौटेवाले दलाल? इन सवालों के सलीब पर चाहे सरकार और प्रशासन को आप भले ही लटका दें मगर यह सच है कि इन प्रश्नों का एक भी जवाब सकारात्मक नहीं होगा।

भूखे भारत, जो असली भारत है, के सच की कई परतें हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हम कंप्यूटर और संचार के मामलों में जितनी भी उपलब्धियाँ गिनवाएँ किंतु यह हकीकत है कि हम भूखे नहीं थे, आज भूखे रखे गए हैं। देश की नौकरशाही हमें भूख से तड़पता देखना चाहती है। क्या वजह है बीते 15 सालों से कालाहांडी-बोलंगिर और कोरापुट की साँसें उखड़ने से बचाने और उन्हें नई जिंदगी देने के नाम पर 2700 करोड़ रुपए सरकार खर्च कर चुकी है। इनमें विदेशी सहयोग शामिल नहीं है। फिर भी वहाँ लोग भूख से मर रहे हैं। इतने पैसे गए कहाँ- इतने पैसे में तो ये जिले स्विट्जरलैंड बनाये जा सकते थे। अब तो वहाँ की आम जनता यही कहती है कि यदि कालाहाण्डी-बोलंगिर और कोरापुट की पूरी धरती एक सौ रुपए के नोट से ढँकी जाती तो भी 2700 करोड़ रुपए खर्च नहीं होते।

कहाँ गए इतने पैसे? चाहे राजस्थान हो या उड़ीसा या बिहार- ये इलाके भूख से क्यों मरते हैं? इस आधारभूत सवाल के जवाब के लिए आज न किसी शोध की जरूरत है और न ही सभा-संगोष्ठियों में मानसिक अय्याशी की। बदहाली से मुक्ति के तमाम उपायों के प्रति चिंता प्रकट करनेवाली इस देश की सरकार स्थानीय समस्याओं को नजरअंदाज कर विकास से जुड़ी नीतियाँ तय करती हैं। खेद की बात यह है कि हमारे व्यवस्थागत ढाँचे जहाँ चरमराकर टूट चुके हैं, हमने उस टूट की मीमांसा आज तक नहीं की। आश्चर्य है कि समूची व्यवस्था को नियंत्रित कर उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए हमने कोई तकनीक अभी तक विकसित नहीं की है। आज तक जो भी विधियाँ व तरीके प्रशासन से जोड़े गए उनसे भ्रष्टाचार को बढ़ावा ही मिला है। योजना मद के खर्च करने के तरीकों पर जितने तरह के अंकुश हैं वे कागजी बखेड़े के अलावा कुछ भी नहीं होते। हमारे कानून इतने लचर हैं कि राशन की दूकान नियमित नहीं खोलने, एक परिवार के लिए निश्चित 35 कि.ग्रा. अनाज हर महीने नहीं देने और जरूरतमंदों को 5 कि.ग्रा. अनाज पंचायत द्वारा बाँटने के प्रावधान को अमल में नहीं लाने पर हल्के-फुल्के ही कानूनी कार्रवाई के प्रावधान हैं जिसने भ्रष्टाचार की खुली छूट दे रखी है।

सरकार आँगनवाड़ी चला रही हैं मगर वे किस हद तक कारगर है। कालाहाण्डी के कुर्सुला गाँव से आँगनबाड़ी सेंटर (मस्कादांडी) की दूरी 8 कि.मी. है। क्या किसी माँ के लिए संभव है कि वह बच्चे सहित इतनी दूरी तयकर सेंटर तक जाए। यदि वह वहाँ तक जाती है तो कमाने कब जाएगी? इसके अलावा सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना से भी भूखे भारत को बड़ा लाभ नहीं मिल रहा है। एक रिपोर्ट के मुताबिक राजस्थान के भीलखेड़ा भाल गाँव के 20 लोगों को 10 दिन तक इस योजना का लाभ मिला।

पूरे देश को भूख से बदहाल गाँवों के बारे में गंभीरता से सोचना होगा। आदिवासी भारत को अचानक सूखामुक्त किया जाना संभव नहीं है। क्योंकि यह हमारे पचास-साठ साल की उपेक्षाओं का परिणाम है। मगर जनजागरूकता के अलावा कृषि की नव्यतम तकनीकों का इन इलाकों में प्रचार-प्रसार और कार्यान्वियन जरूरी है। आज जरूरी है कि गेहूँ-चावल से सालभर उनके पेट भरने की व्यवस्था करना, उनकी खरीद क्षमता बढ़ाना और सेल्फ हेल्फ ग्रुप के जरिए बचत को बढ़ावा देना। पर्यावरण से जुड़े कारकों के प्रति तटस्थ सोच रखकर वर्षा की बूँदों और वृक्षारोपण के महत्व को समझना जरूरी है। इतनी सारी बातें, इन बातों से जुड़े संकल्प, संकल्प की दृढ़ता नौकरशाहों के समझ से बाहर की बात है। यह वही वर्ग है जो पलामू की बंजर धरती पर ग्रामीणों में बत्तख बाँटती है, जहाँ के तालाबों में सावन की हवाओं के भभूके से धूल उड़ते हों वहाँ मत्स्य पालन के बढ़ावा के लिए अभियान चलाती है और तेजी से घट रहे कोरवा समुदाय में मुफ्त निरोध बाँटती है। इस भूखे कौम पर भरोसा करने से बेहतर है खुद को आगे लाना-गाँवों के इर्द-गिर्द के संसाधनों का सही उपयोग करना। ■

(लेखक द्रय इन्त्वाट नामक एक गैर सरकारी संगठन से जुड़े हैं)

दलित और विमुक्त जातियाँ : अन्तःसंबंध

■ रजनी तिलक

मानवाधिकार के मुद्दे पर कार्य करते समय हमने बहुत से दलित अत्याचारों की धाटनाओं की जाँच की है, उनपर कार्यवाही हेतु संबंधित आयोग व विभागों तक पहुँचाया है। घर से बाहर आते-जाते बहुत बार मैंने गड़िया लुहार और उनके कुनबे को एक साथ रहते हुए और लोहे को गर्म कर कूट-कूट कर औजार वगैरह बनाते देखी थी। उनकी बहु-बेटियों को विचित्र पोशाकों में, घने बालों की जुड़ी बाँधकर, सिर पर ओढ़नी लिए लोहा कूटते या आग की भट्टी में हवा भरके धधकाते देखी थी। खुले आसमान के नीचे सड़क के किनारे तम्बू डाले, बैलगाड़ी, चूल्हा, बर्तन, कपड़ों की गठरी आदि सब उठाऊ गृहस्थी का समान लिए उन्हें पड़े देखी थी। उस समय मेरी इच्छा उनसे बात करने की होती। उनका संसार, उनका जीवन इतना अनिश्चय-अस्थिर...। बच्चों की पढ़ाई, औरतों का स्वास्थ्य देखकर दुःख होता।

एक बार मैं लक्ष्मीनगर इनके एक डेरे पर पहुँची। मैंने सीधे ही बता दिया कि मैं क्या चाहती हूँ और उनसे बातचीत शुरू की। बाल-विवाह इनके लिए गर्व की बात थी, तो बच्चों को पढ़ाना बेकार का काम। परन्तु इनमें ही एक औरत ऐसी थी जो चाहती थी कि उन्हें कहीं बस जाना चाहिए। परम्पराएँ, रीति-रिवाज, इनका धंधा, गरीबी, स्थाई निवास का सपना उनकी आँखों में बेवसी से झलक रहे थे। औरत जात क्या करे? समाज की इज्जत के नाम पर औरतों की बिलकुल नहीं चलती। बाहर से सब सुन्दर आजाद दिखने वाली ये बहु-बेटियाँ पैदा होती हैं, शादी होती है, मर्द के साथ सोती हैं, बच्चे जनती हैं और बूढ़ी होकर खाट पर बैठे-बैठ ढेर हो जाती हैं।

ऐसे ही समाज की औरतों की जिन्दगी और समाज के बारे में लक्ष्मण माने की आत्मकथा 'पराया' में पढ़ने का मौका मिला। इसमें इन्होंने समाज की वर्जनाओं के साथ-साथ इस समाज की स्त्री के जीवन में पुती कालिख को अपनी कलम से उकेरा है। 'पराया' का नायक तराई-तराई घूमनेवाले हैं जो अपने पशुओं को चराते हुए सुदूर निकल जाते हैं जहाँ उनके पशुओं के लिए चारा मिल जाए।

इनके माँ-बाप का जीवन बड़ा कठारे होता है। बच्चे उपेक्षित रहकर पलते-बढ़ते हैं। इनकी पढ़ाई-लिखाई की किसी को सुध नहीं रहती है। गाँव के बड़े जमींदारों की गुलामी करनी पड़ती है। उस पर भी बहु-बेटियों की इज्जत सुरक्षित नहीं रहती। ऐसी ही एक स्त्री का चित्रण बहुत मार्मिक है। वह दिनभर घूँघट करके काम करती है। उसकी आँखें बहुत सुन्दर हैं। उसका पति भी उसे अपनी आँखों से दूर नहीं होने देता। एक रात कुछ लोग आकर इस स्त्री की इज्जत लूट लेते हैं। इस घटना से एक तो वह पहले ही बुरी तरह से आहत और उत्पीड़ित थी, उस पर उसके पति ने उसे माफ नहीं किया। अनेकों सामाजिक लांछनों के बीच उसकी आँखें हमेशा-हमेशा के लिए पथरा गई।

'उचक्का' लक्ष्मण गायकवाड़ की आत्मकथा है जिसमें हम उन्हें प्रतीक मानकर इस समाज के धंधे के पीछे छुपी अनेकों सामाजिक वर्जनाओं से वाकिफ होते हैं। इनकी कुशाग्र बुद्धि अपने धंधे में चौंका देनेवाली प्रतीत होती है। उचक्का का पूरा समाज, जो समाज की मुख्यधारा से कटा हुआ था, अपर्याप्त आय, अनिश्चित जिन्दगी के कारण जेब कतरना व ठगी करना उनका पेशा बन गया था। इसे व्यवसाय की तरह पोषित किया गया। इसमें विधिवत युवकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इस धंधे को न अपनानेवाले युवकों को तरह-तरह से मार-पिटाई, टार्चर करके सीधा किया जाता। ठगी के चौंकाने वाले तरीके को सहज ही अमल में लाया जाता। समाज की नफरत, गरीबी, बेईमानी की मार झेलकर ये युवक पुलिस की भयानक मार के भी अभ्यस्त हो जाते थे।

कालान्तर में इन जातियों में सम्मान की भावना विकसित हुई। महाराष्ट्र में डा० अम्बेडकर की विचारधारा से प्रेरणा पाकर इन जातियों में भी स्वाभिमान जागा। आत्मकथाओं द्वारा अपरिचित शोषित समाज एक दूसरे की व्यथा से समाज में प्राण में फूँक रहे हैं, उनमें वैचारिक आदान-प्रदान बढ़ रहा है।

आजादी के बाद बहुत सी अत्यन्त पिछड़ी जातियों को अनुसूचित जाति व जनजाति में डाल दिया गया। फिर भी बहुत सी जातियाँ इसमें प्रवेश पाने से वंचित रह गईं। जिस जातियों को सूचीबद्ध किया उन्हें संवैधानिक आरक्षण द्वारा विशेष प्रावधान से शिक्षा, रोजगार, राजनैतिक प्रतिनिधित्व देकर मुख्यधारा में लाने की कोशिश की गई। इसका सकारात्मक प्रभाव दिखता है। सामाजिक प्रताड़ना व पूर्वाग्रहों को झेलते हुए भी ये जातियाँ कुछ सक्षम हुई हैं। परन्तु विमुक्त-घुमन्तू जनजातियाँ, बंदर-भालू नचानेवाले, भीख मांगने, शिकार करनेवाले, सांसी, नट आदि जातियों में से भी कुछ जातियाँ अनुसूचित जाति में शामिल नहीं हुईं।

जंगल, पशु-पक्षियों, प्राणियों व प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर ये जातियाँ शहरी जीवन से पिछड़कर अलग-थलग पड़ गई। सभ्य समाज के विकास ने इनके जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया। रोजगार के नये विकल्प, साधन, प्रशिक्षण दिए बगैर जंगल, पशु-पक्षी प्राणियों से संबंधित इनके व्यवसायों को कानून प्रतिबन्धित कर दिया गया है। तोता, मैंना आदि चिड़िया पकड़ कर बेचनेवाले बहेलिये, बन्दर-भालू, साँप नचाने वाले को पशु अधिकार में बन्द कर दिया जाता है। तब ये क्या करें? इन जातियों/जनजातियों के लिए सरकार के पास क्या सकारात्मक विकल्प है? फेरी लगाने वाले, शनि महाराज के नाम पर तेल माँगनेवालों को भिक्षावृति कानून में पकड़ा जाता है। इनके बच्चे, इनकी कौमों की सुरक्षा, इनके मानवाधिकारों की रक्षा कौन करे? ये लोग पुलिस प्रशासन की प्रताड़ना से कैसे सुरक्षित हों? इतने दबावों और असुरक्षा के बीच ये लोग धीरे-धीरे अपने जीवन की सुरक्षा के लिए एकत्रित हो रहे हैं। शहरी सभ्य समाज भूखे नंगे प्रताड़ित लोगों की पीड़ा को भी नुमाइश लगाकर भुनाना चाहता है। संघर्ष की उठती मूक आवाज को सहानुभूति देता हुआ उसका श्रेय स्वयं लेना चाहता हैं। ऐसा ही एक नजारा विगत 31 अगस्त, 2002 को विमुक्ति के पचास वर्ष पूरे होने के अवसर पर दिल्ली में आयोजित एक सम्मेलन में दिखा। शोषित जमातों को शोषितों के साथ जोड़ने की बजाय उनकी अस्मिता और पहचान के मुद्दे को गौरवान्वित करने की कोशिश की गई। इसमें दलित आन्दोलन के साथ जुड़ने के विकल्पों को नजरअंदाज किया गया। ठीक वैसे ही जैसे कि आदिवासी आन्दोलन को अलग अस्मिता के बहाने दलित आन्दोलन से दूर रखने की साजिश की गई।

दिल्ली महानगर है। यहाँ अस्मिता खरीदने व बेचनेवाले महाठग बैठे हैं। बड़ी-बड़ी राजनैतिक हस्तियाँ, फंड़िंग एजेंसी, बड़े चर्चित लेखक, टी०वी० चैनल जो इन मुद्दों को उत्पाद की तरह भुना सकती है। लेकिन क्या हम हजारों-लाखों लोगों की समस्याएँ, रोजी-रोटी, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थायी आवास, पुलिस प्रशासन आदि की, व्यक्तिगत प्रभाव से दूर कर पाएँगे?

यह नीतिगत मामला है। एक पूरे समाज के जिन्दा रहने या मिट जाने का सवाल है। उन्हें अपने संघंर्षों से सृजन के प्रतिमान स्वयं स्थापित करने होंगे।

सहानुभूति की धरा समतल है, अनुभूति की कंटीली और खुरदरी है।

घुमन्तू जातियों पर मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' का प्रारम्भ एक घुमन्तू जाति के जीवन की दुर्दान्त कथा को औपन्यासिक पृष्ठभूमि पर उतारते हुए इस जाति की एक नवयौवना के पति को पुलिस द्वारा पकड़े जाने के बाद उसके वियोग में तड़पते हुए दिखाया है। दूसरी तरफ पिछली पृष्ठभूमि की याद में जमींदार की मायूस पथराई आँखें, जीवन को चलचित्र की तरह परत दर परत खोलता जाता है। अलमा कबूतरी नायिका है। अनेक नायिकाओं और अनेक नायकों के जीवन को घेरती हुई यह कथा कबूतरा समाज को केन्द्र में रखती है। बिन माँ की 'बच्ची कबूतरी', कबूतरा समाज की क्रांतिकारी

नेत्री है जिसका सपना अपने समाज को मुक्त कराना है, उन्हें धंधे से बाहर निकालना। दूर बस्ती में एक पिता को षड्यंत्र कर मार दिया जाता है। उसकी पत्नी से उत्पन्न पुत्र, धोखे से जमींदार के संसर्ग से पैदा हुआ जो धंधे में नहीं पड़ता चाहता, जो समाज की बुराइयों से अछूता है, को कबूतरा समाज का नायक बनने के लिए शहर ले जाते हैं। कबूतरी के पिता को डाकू कहकर पुलिस द्वारा मार दिया जाता है। आन्दोलन के छुपे हुए बीज कहीं अंकुरित नहीं होते। शीत आक्रोश दफन हो जाता है तो दूसरा विक्षिप्त हो जाता है। फिर शुरू होती है अल्मा का स्त्रैण संघर्ष। बिन माँ की बेटी, समाज से दूर उसमें साम-दाम-दंड कहाँ से आया? चालाकी- साम, दाम, दंड क्या स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है या कबूतरी समाज का? जगह-जगह लूटी गई, सतायी गई, फिर एक मंत्री के घर में रखैल बनाकर रहने लगी और अन्त में अपनी त्रिया द्वारा उसकी वारिस बन बैठी? क्या यह समाज का सच है या नाटकीयता?

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्रियों के विचित्र चरित्र उभर कर आए हैं। प्यार, सेक्स, अभिव्यक्ति उनकी आजादी व स्वाभाविकता को प्रकट करती है जो इस उपन्यास में भी दो महिला पात्रों को मुखर अभिव्यक्ति देती है, जो असहज है।

ठीक इसके विपरीत उचक्का तथा पराया में पूरे समाज के संघर्ष की अभिव्यक्ति जमीनी सहज प्रकट करती है। यह अपने पीछे एक ऐसा एहसास छोड़ती है जो सताए लोगों को आपस में जोड़ती है। प्रेम हर सताए-दबाए समाज में है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति क्षीण है, क्योंकि उनकी प्राथमिकता अपने को जिंदा रखने के लिए संघर्ष करने की है और उनकी संवेदनाएं इसे ही अभिव्यक्ति करती हैं। आत्मकथा के नायकों के प्रेम प्रसंग उनकी संपूर्णता में अभिव्यक्त हुए हैं। उनके लिए प्रेम भी सहज सुलभ नहीं है।

विमुक्त जनजातियों की दो जातियों के बीच काम करते हुए हमने उन्हें दलित परिभाषाओं के साथ जोड़ कर देखा। उनके साथ काम करते हुए हमें बहुत ही विचित्र और सुखद अनुभव लगातार हो रहे हैं, क्योंकि मैं स्वयं दलित वर्ग में पैदा हुई। इसलिए मैं इनको इस बात का विश्वास दिलाने में अन्तत: सफल हुई कि वे और हम एक साथ दलित हैं। ■

संविधान की आठवीं अनुसूची में बंजारा भाषा का स्थान हो

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 18 संवैधानिक रूप से भारतीय भाषाओं को मान्यता देकर समावेश किया गया है। उनमें से कुछ ऐसी भाषाएँ हैं जो देश की कम जनसंख्या बोलती हैं। जैसे-सिंधी, कोकणी 60,000 लोग बोलते हैं। यहाँ तक कि पंजाबी भी लगभग एक करोड़ लोग बोलते है। तो भी हम 6 करोड़ बंजारा लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि बंजारा, लंबानी/लम्बाडी भाषा बोलनेवाले 6 करोड़ बंजारा लोग, जो 26 राज्यों और महानगरों में रहते हैं, उसके बाद भी बंजारा भाषा भारत के संविधान के आठवीं अनुसूची में सम्मिलित नहीं है। यह बंजारा भाषा बहुत प्राचीन है और इसके बहुत से शब्द राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी और हिन्दी भाषा से आए हैं।

कहा जाता है कि लगभग तीन हजार साल से यह भाषा बंजारा लोगों द्वारा बोली जाती है। आन्ध्र प्रदेश में बंजारा भाषा तेलुगू के बाद बोली जाती है इतनी महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध भाषा जो 6 करोड़ भारत के लोगों द्वारा बोली जाती है। भारत के संविधान में देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के 55 साल बाद भी संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित नहीं की गई है। अत: ऑल इंडिया बंजारा सेवा संघ और भारत बंजारा पाक्षिक पत्र ने 6 करोड़ बंजारा लोगों की आवाज के द्वारा भारत सरकार से यह माँग की है कि वह तुरन्त भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में बंजारा भाषा का समावेश करे।

देखिए: ('भारत बंजारा', पाक्षिक पत्र-जनवरी 15, 2003)

भारतीय जनगणना में गैर-अधिसूचित जनजातियों, खानाबदोश-अर्द्ध-खानाबदोश जनजातियों की गणना करना

श्री जी. एन. देवी,
सम्पादक, बूधन न्यूजलेटर एवं सचिव,
गैर-अधिसूचित एवं खानाबदोश जनजातीय अधिकार कार्य समूह,
6 यूनाईटेड एवेन्यू, दिनेश मिल के समीप,
वड़ोदरा-390007

दिनाँक : 23 सितम्बर, 2002

महोदय,

कृपया भारत की जनगणना, 2001 पर आधारित भारत में गैर-अधिसूचित जनजातियों के जनसंख्या के आंकड़ों से सम्बन्धित अपने दिनांक 11 मई, 2002 के पत्र संख्या बी.आर.पी.सी./2002 का अवलोकन करें। आपने इस पत्र के साथ कोई प्रमाण या विशिष्ट दृष्टांत नहीं भेजा है जिससे यह प्रतीत हो सके कि जनगणना प्रगणकों ने जनसंख्या की गणना के समयं गैर-अधिसूचित जनजातियों को जानबूझकर शामिल नहीं किया है जैसा कि आपसे अनुरोध किया गया था। इसके बावजूद आपने भारत की जनगणना, 2001 में गैर-अधिसूचित जनजातियों की जनसंख्या की अलग से गणना कराने हेतु अपने विचारों पर ध्यान दिए जाने का अनुरोध किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जनगणना संगठन द्वारा उपलब्ध कराए गए जनसंख्या के आंकड़ों की प्रकृति और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में देश की जनसंख्या की जाति-वार गणना की स्थिति तथा दशकीय जनगणनाओं के समय देश में कराई गई जनसंख्या की गणना की प्रक्रिया के बारे में भी सम्भवत: आप नहीं जानते हैं। ये दो अलग-अलग मुद्दे हैं और इन्हें सही परिप्रेक्ष्य में समझना जरूरी है।

वास्तव में प्रत्येक दशकीय जनगणना में जनगणना संगठन द्वारा गैर-अधिसूचित जनजातियों की जनसंख्या सहित परिवार के प्रत्येक सदस्य, बेघर जनसंख्या/ चलती-फिरती जनसंख्या को ध्यान में रखा जाता है तथा उनकी गणना की जाती है। देश की जनसंख्या की जाति-वार गणना 1951 की जनगणना से बन्द कर दी गई और इसलिए विभिन्न राज्यों में मान्यता प्राप्त अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर गैर-अधिसूचित जनजातियों सहित अलग-अलग जाति/समुदाय/जनजाति की गणना एवं जनसख्या के ब्यौरे पृथक रूप से उपलब्ध नहीं है। गैर-अधिसूचित जनजातियों (अ.जा. एवं अ.ज.जा. के रूप में मान्यता प्राप्त लोगों को छोड़कर) की जनसंख्या को देश की सामान्य जनसंख्या के साथ जोड़ दिया जाता है और जनसंख्या के समेकित आंकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। यदि आप विभिन्न राज्यों में मान्यता प्राप्त अ.जा. एवं अ.ज.जा. के 1991 की जनगणना के गै.अ.जा. के आंकड़ों के बारे में जानना चाहते हैं तो आप राज्य स्तरीय 'अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बारे में विशेष सारणियां' नामक प्रकाशन भाग VIII (i) और (ii) देखें।

यह बताना महत्वपूर्ण है कि जनगणना संगठन ने आपके न्यूजलेटर में दिए गए लेख की विषय-वस्तु पर विचार किया है तथा गाँवों/बस्तियों में रह रही गैर-अधिसूचित जनजातियों की जनसंख्या के सम्बन्ध

में भारत की जनगणना, 2001 की जनगणना अनुसूचियों की सैम्पल आधार पर जाँच करने की संभाव्यताओं को पता लगा रहे हैं। बशर्ते कि गैर-अधिसूचित जनजातियों, खानाबदोश तथा अर्ध-खानाबदोश जनजातीय समूहों की सही और सुस्पष्ट राज्य-वार सूची के साथ-साथ उनके रहने के अलग-अलग स्थानों अर्थात् गाँवों तथा बस्तियों के नाम, वार्डों सहित नगरों आदि से सम्बन्धित जानकारी इस संगठन को भिजवा दी जाए।

अतः आपसे अनुरोध है कि आप इस कार्यालय को उक्त ब्यौरे भिजवा दें ताकि इस सम्बन्ध में कार्रवाई शुरू की जा सके। चूँकि प्रस्तावित कार्य के लिए देश के विभिन्न भागों में संक्षिप्त सर्वेक्षण किए जाने की साम्भावना है। इसलिए आपके संगठन द्वारा यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि गैर अधिसूचित जनजातियों की रह रही जनसंख्या वाले गाँवों/बस्तियों तथा शहरों/ वार्डों आदि की सूची सही हो। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इस सम्बन्ध में भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त से परस्पर सुविधाजनक तारीख पर मिलें। हमें आपके पत्र की प्रतीक्षा रहेगी।

भवदीय,

(आई.सी.अग्रवाल),

वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी (सा. अं.)

(गैर-अधिसूचित एवं खानाबदोश जनजातीय अधिकार कार्य समूह के सचिव डॉ. जी.एन. देवी के पत्र के जवाब में भारत के महारजिस्ट्रार के कार्यालय (जनगणना) से प्राप्त एक पत्र)

रोमा राष्ट्रीय दिवस

अन्तर्राष्ट्रीय रोमानी यूनियन अपनी छठी विश्व रोमानी कांग्रेस 2004 में लंदन में मनाने जा रही है।

इन्टरनेशनल रोमानी यूनियन और 'एसोसिएशन ऑफ दी कम्युनिटी ऑफ इंडीपेन्डेन्ट स्टेटस् एण्ड बाल्टिक स्टेटस्' (पूर्व सोवियत यूनियन) रोमा लोगों के दो सबसे बड़े संगठन हैं। रोमा लोग प्रतिवर्ष 8 अप्रैल को अपना राष्ट्रीय दिवस मनाते हैं, जोकि विश्व के लगभग 60 देशों में मनाया जाता है। रोमा लोगों के अनुसार इस दिन वे दुनिया में अपने भाईचारा, एकता और एक लक्ष्य को प्रदर्शित करते हैं।

ट्राँस यूरोपियन रोमा फेडरेशन के अध्यक्ष श्री ग्राटन पक्सन द्वारा श्री रंजीत नाईक, अध्यक्ष, 'ऑल इंडिया बंजारा सेवा संघ' को लिखे गए ई-मेल के प्रमुख अंश नीचे दिया जा रहा है-

प्रिय रंजीत नाईक,

इतने दिनों बाद पुनः संपर्क में आना अच्छा लगा।

मैं हृदय से यह महसूस करता हूँ कि रोमा और बंजारा बहनों और भाइयों के बीच संबंध और संपर्क स्थापित होना चाहिए। भारत से बाहर लगभग डेढ़ करोड़ रोमा लोग रहते हैं। बंजारों की संख्या के साथ मिला देने पर हम साढ़े सात करोड़ लोग हो जाते हैं।

प्रतिवर्ष 8 अप्रैल को हम लोग रोमा राष्ट्र दिवस मनाते हैं और मुहिम चलाते हैं कि इसे 'बिना क्षेत्र का राष्ट्र' की मान्यता दी जाए। जहाँ तक छठे विश्व रोमानी कांग्रेस की बात है यह 2004 में होगा। इसका फैसला इन्टरनेशनल रोमानी यूनियन करेगी। हमने इसे लंदन में करने का सुझाव रखा है। मैं चाहूँगा कि आप इस कांग्रेस में अपना प्रतिनिधिमंडल भेजे जिससे कि हम लोगों के बीच एक संबंध बनाया जा सके। हम आपको इस कांग्रेस में आमंत्रित करते हैं और स्वागत करते हैं।

प्रस्तुति : डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

सरकारी एजेंसियाँ मानवाधिकार उल्लंघन करें तो सरकार मुआवजा दे

■ न्यायाधीश जे. एस. वर्मा

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पूर्व अध्यक्ष न्यायाधीश जे. एस. वर्मा ने कहा कि सरकारी एजेंसियों के मानवाधिकार उल्लंघन करने के मामले में सरकार को पीड़ित व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना के लिए मुआवजा देना चाहिए। यह बात न्यायाधीश वर्मा ने शिक्षकों और शिक्षाविदों के लिए लिंग, जाति, धर्म और विकलांगता के आधार पर भेदभाव नाम की किताब का विमोचन करने के बाद संवाददाताओं से कही। यह पूछे जाने पर कि कश्मीरी पत्रकार इफ्तिखार जीलानी के पास से बरामद दस्तावेज आपत्तिजनक नहीं थे, फिर भी उन्हें जेल में रखकर सरकार ने क्या उनके मानवाधिकार का उल्लंघन नहीं किया। इस प्रश्न के जवाब में न्यायाधीश वर्मा ने कोई सीधी टिप्पणी करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि यह मामला अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। सरकार के पास निचली अदालत के फैसले के खिलाफ हाईकोर्ट में अपील करने का विकल्प है। यह अभी पूरी तरह साबित नहीं हुआ है कि पत्रकार निर्दोष है। उन्होंने कहा कि सरकार न केवल अपनी किसी संस्था की ओर से मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए जिम्मेदार है बल्कि अन्य व्यक्तियों की ओर से मानवाधिकारों का उल्लंघन किए जाने पर भी उनकी जिम्मेदारी बनती है।

न्यायाधीश वर्मा ने भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के केरल के एक वैज्ञानिक का उल्लेख किया जिसको एक जासूसी मामले में जान बूझकर फँसाया गया था। और उसने मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना झेली थी। मानवाधिकार आयोग ने उसे दस लाख रुपए का अंतरिम मुआवजा देने का निर्देश दिया था।

मानवाधिकार आयोग ने मुआवजे का आदेश सुप्रीम कोर्ट की सरकार की कड़ी आलोचना के बाद दिया था कि वैज्ञानिक निर्दोष है और यह साबित हो गया है कि उसे जानबूझकर फँसाया गया है। उस मामले में भी केरल सरकार ने मानवाधिकार आयोग के फैसले को चुनौती दी थी और मामला हाईकोर्ट में लंबित है।

न्यायाधीश वर्मा ने कहा कि ऐसा कदम तब उठाया गया जब यह पूरी तरह साबित हो गया कि पीड़ित को गलत आरोपों में फँसाया गया है और उसके मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है। लेकिन जीलनी के मामले में यह अभी पूरी तरह साबित नहीं हुआ है। उन्होंने कहा कि हर बरी होने वाले व्यक्ति का यह मतलब नहीं है कि वह निर्दोष है क्योंकि कई बार व्यक्ति तब बरी हो जाता है जब गवाह किसी न किसी कारण से मुकर जाते हैं।

हालांकि न्यायाधीश वर्मा गुजरात की स्थिति से पूरी तरह संतुष्ट नहीं है। लेकिन उन्होंने कहा कि मानवाधिकार आयोग ने न केवल गौरव यात्रा स्थगित कराने में प्रमुख भूमिका निभाई बल्कि अप्रिय घटनाओं को होने से भी रोका। न्यायाधीश वर्मा ने कहा कि आयोग ने मानवाधिकार उल्लंघन के खिलाफ कार्रवाई ही नहीं की बल्कि मानवाधिकारों का और उल्लंघन होना भी रोका। उन्होंने कहा कि काफी कुछ किया जाना है, हम अपना प्रयास जारी रखे हुए हैं और आयोग राज्य में मानवाधिकार की सुरक्षा के लिए काम करता रहेगा।

न्यायाधीश वर्मा ने इस बात से असहमति जताई कि हाल में देश की धर्मनिरपेक्ष छवि को धक्का पहुँचा है। उन्होंने कहा कि देश में करीब सभी लोग धर्मनिरपेक्ष हैं। इसलिए देश की धर्मनिरपेक्ष छवि को कोई खतरा नहीं है। खतरे की धारणा कुछ लोगों ने प्रचार पाने के लिए बनाई है और मीडिया को ऐसे लोगों को प्रचार न देकर हतोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभानी है।

न्यायाधीश वर्मा ने अपने कार्यकाल पर संतोष व्यक्त करते हुए कहा कि उन्होंने आयोग के अध्यक्ष के रूप में कोई भी मौका बेकार नहीं किया जब भी मानवाधिकारों की सुरक्षा को लेकर उनके सामने कोई मामला आया।

आयोग की ओर से जारी 'लिंग, जाति, धर्म, विकलांगता पर भेदभाव' विषय को लेकर पुस्तिका विशेष रूप से शिक्षकों के लिए जारी की गई है। इसके माध्यम से शिक्षक अपने छात्रों को यह समझा सकेंगे कि भारतीय समाज के संदर्भ में लिंग, जाति, धर्म, विकलांगता या अन्य आधारों पर किए जाने वाले भेदभाव को रोकना क्यों जरूरी है। ■

(जनसत्ता-दिल्ली, 16 जनवरी, 2003 में प्रकाशित खबर का कुछ अंश)

श्री डालचन्द्र बागड़ी पेशे से अध्यापक हैं और बागरिया/बागरी समाज सुधार संस्थान, जिला- राजसमंद, राजस्थान के अध्यक्ष हैं। उनसे प्राप्त पत्र के प्रमुख अंश नीचे प्रस्तुत है।

बागरिया/बागरी समाज की ओर से राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री को पत्र

दिनाँक : 25-9-2002

बागरी उर्फ बागरिया समाज राजस्थान में निवास करता है। यह समाज राजस्थान राज्य में मूल रूप से राजसमंद, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, अजमेर, भीलवाड़ा आदि जिलों में बड़ी संख्या में निवास करता है। दूसरे जिलों में भी निवास करते हैं मगर कम संख्या में।

इस समाज का मुख्य धन्धा झाडू, चटाई, पंखे बनाना है। यह पलायनवादी समाज है। क्योंकि इनका उपरोक्त धन्धा जहाँ अच्छा चलता है वहाँ ये हजारों की संख्या में मिल जाते हैं। इनका राजस्थान से बाहर धन्धा करने का स्थान कश्मीर, दिल्ली, फरीदाबाद, किशनगढ़, पाली, मकराना, फालना, अहमदाबाद, सूरत, बम्बई आदि है। बाहरी राज्यों में मौसमानुसार सपरिवार रहते हैं। इस कारण इनका शिक्षित होना मुश्किल ही है। वर्तमान समय में इस समाज के साथ घोर अन्याय व ज्यादतियाँ हो रही हैं। क्योंकि अगस्त 1994 से पूर्व यह समाज अनुसूचित जाति की श्रेणी में आता था। मगर तत्कालीन भा.ज.पा. सरकार ने बागरिया समाज को बागरी से अलग मानते हुए अन्य पिछड़ा वर्ग का दर्जा दे दिया है। यह इस गरीब व असहाय समाज के साथ घोर अन्याय व धोखा है। क्योंकि अनुसूचित जातियों की जो सूची है उसमें बावरी उर्फ बावरिया समाज का उल्लेख किया गया है और उन दोनों नाम की जातियों को अनुसूचित जाति का दर्जा दे रखा है। उसी तरह से बागरी उर्फ बागरिया का उल्लेख होना चाहिए था। इस तरह इस गरीब समाज को अन्य पिछड़ा वर्ग का दर्जा देकर अन्याय किया गया है। जबकि मामूली गलती है। क्योंकि जैसे एक कहानी होगी तो हम कहानी ही बोलेंगे और एक से अधिक कहानी होगी तो कहानी न कहकर कहानियाँ कहेंगे अर्थात एक वचन और बहुवचन के हिसाब से बागरी/बागरिया है, न कि बागरी से अलग बागरिया समाज है। बल्कि बागरिया समाज बागरी समाज है। इस समाज का कोई भी व्यक्ति किसी गाँव का वार्ड पंच या उच्च श्रेणी के अफसर के पद पर कार्यरत नहीं है। वर्तमान समय में इस समाज के सिर्फ 5 अध्यापक वह भी तृतीय श्रेणी के हैं। इस समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दशा बड़ी शोचनीय है। ऐसे गरीब, असहाय व भिखारी समाज को अन्य पिछड़ा वर्ग की श्रेणी में लेना घोर अन्याय है। इस समस्या के समाधान हेतु वर्तमान मुख्यमंत्री, समाज कल्याण मंत्री, प्रदेशाध्यक्ष, जिलाधीश आदि लोगों से सम्पर्क किया और लिखित में समस्या बताई मगर किसी भी मंत्री ने इस समाज का साथ नहीं दिया । इस समस्या के समाधान हेतु प्रधानमंत्री, केन्द्रीय (दिल्ली) मंत्रियों और विपक्ष के नेता को भी लिखित आवेदन दिया गया। मगर वहाँ से भी समस्या का कोई समाधान नहीं हो रहा है।

इस समाज का रहन-सहन, खानपान, आर्थिक जीवन, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक जीवन का परिचय निम्नवत है :-

1. सामाजिक-आर्थिक दशा

राजस्थान में निवास करने वाले बागरी/बागरिया समाज का सामाजिक जीवन देखने पर ही समझा जा सकता है। इनका रहन-सहन देखकर आदि मानव की कहानी याद आ जाती है। वैसे बागरी/बागरिया समाज के लोगों का घर गाँव से करीब 1 किमी. की दूरी पर होता है। जहाँ भिक्षावृत्ति करके अपना व परिवार का पेट पालते हैं। आज भी उच्च वर्ग इस समाज के लोगों को सार्वजनिक स्थलों पर नहीं जाने देते हैं। गाँव के किसी मन्दिर या चबूतरे पर एक कुत्ता जा सकता है मगर इस समाज के लोगों को नहीं जाने दिया जाता है।

2. खानपान

बागरिया/बागरी समाज के लोग खाने में माँस का उपयोग अधिक करते हैं। पहले इस समाज के लोग मरे हुए भैंस का माँस खाने में उपयोग करते थे मगर वर्तमान में बिलकुल बन्द है। माँस में बकरा, मुर्गा, मछली, पांडे का माँस खांते हैं।

3. शिक्षा

राजस्थान में निवास करने वाले बागरी/बागरिया समाज में शिक्षा लगभग शून्य प्रतिशत है। क्योंकि पढ़ाई में रुचि नहीं लेते हैं तथा गाँव के लोग इनके बालकों को अन्य बालकों से दूर बिठाते हैं। राजस्थान में इस समाज से सिर्फ एक युवक ने ही उच्च शिक्षा पाई है जोकि यह लेख प्रेषित कर रहा है। इसके अलावा कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसने उच्चशिक्षा प्राप्त नौकरी ली हो।

4. राजनैतिक दशा

राजस्थान में निवास करने वाला बागरी/बागरिया समाज का कोई भी व्यक्ति किसी ग्राम का वार्ड पंच, सरपंच तक नहीं है। विधायक या मंत्री बनने की बात तो इस समाज के लिए सपना है।

5. कला

इस समाज के लोगों को झाडू बनाना, चटाई बनाना, पंखे बनाना आदि कलाएं आती हैं।

6. शादी-ब्याह

इस समाज के लोग वर के बाप से 5 या 10 हजार रुपये लेकर अपनी बच्ची की शादी करवाते हैं। इस अछूत समाज के विवाह समारोह में कोई ब्राह्मण नहीं आता है। इनकी कुल देवी कालिका के भोपे को बुलाकर सात फेरे पूर्ण करवा दिये जाते हैं।

7. पंचायती (न्याय)

इस समाज में समाज का कोई मान्य व्यक्ति समाज का फैसला कर देता है जो सभी को मान्य होता है। इनके मौसर की परम्परा होने के कारण वह मान्य आदमी जब तक नहीं आता है पगड़ी की रस्म पूरी नहीं हो सकती है।

8. भाषा

राजस्थान में निवास करने वाली बागरी/बागरिया समाज की मूल भाषा गुजराती है। परन्तु ये सम्बन्धित क्षेत्र की भाषा भी बोल लेते हैं।

निष्कर्ष

अन्त में मेरा करवद्ध अनुरोध है कि राजस्थान में निवास करने वाले बागरिया समाज को न्याय एवं हक दिलाने

की कृपा करें। बागरिया समाज की बहुत सी समस्याएँ हैं, मगर मैंने समस्याओं को संक्षिप्त रूप से वर्णित किया है। माननीय राष्ट्रपतिजी से आग्रह है कि आप इस गरीब व असहाय समाज को अन्य पिछड़ा वर्ग की श्रेणी से हटाकर अनुसूचित जाति का दर्जा दिलाने की कृपा करें। यदि ऐसा नहीं होगा तो यह समाज सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ता जाएगा। अत: आप इस समाज को बागरी के अन्तर्गत मानते हुए अनुसूचित जाति का दर्जा दिलाने की कृपा करें। इसी आशा व विश्वास के साथ यह पत्र मैं आप तक प्रेषित कर रहा हूँ कि आप बागरिया समाज को अनुसूचित जाति का पुन: दर्जा दिलाएगे।

धन्यवाद ।

नोट- इस पत्र के साथ पूर्व में उपरोक्त केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के मंत्रियों की भेजी गयी प्रति संलग्न है।

पता-

निवेदनकर्ता - डी.सी.बागड़ी,
अध्यापक एवं अध्यक्ष बागरिया/बागरी
समाज सुधार संस्थान, जिला राजसमंद,
राजस्थान (भारत)

उन्माद, असहिष्णुता और स्वप्नहीनता के इस कठिन समय में कबीर

■ **धर्मनारायण यादव**

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सामाजिक अध्ययन संस्थान की समिति कक्ष में लिटरेरी क्लब की ओर से 'उन्माद, असहिष्णुता और स्वप्नहीनता के इस कठिन समय में कबीर' विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन 15 नवम्बर, 2002 को किया गया। इस संगोष्ठी में 'रस्साकशी' के लेखक और भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. वीर भारत तलवार और कबीरपंथी लेखक व कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद के प्रमुख अभिलाष दास ने अपने विचार व्यक्त किए।

संगोष्ठी की शुरुआत करते हुए 'लिटरेरी क्लब' के संयोजक धर्मनारायण यादव ने कहा, ''आज इस संगोष्ठी का आयोजन ऐसे समय में किया जा रहा है जबकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं को इराक पर थोपने में सफल रहा। दुनिया के एक बहुत बड़े हिस्से में लगातार युद्ध के बादल उमड़ते-घुमड़ते रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, गुजरात के दंगों को देखा-सुना और भुगता जा चुका है। झज्जर की वर्णवादी क्रूरता से देश का बहुत बड़ा हिस्सा आहत है। आज भी वहाँ तनाव है।''

उन्होंने कहा कि जब-जब ऐसा कठिन समय आया है तब-तब धर्म निरपेक्ष मानवतावादी बुद्धिजीवियों ने भक्ति साहित्य और साहित्यकारों की ओर देखा है। उनसे प्रेरणा ग्रहण की है। ऐसे भक्तिकालीन साहित्यकारों में कबीर निर्विवाद रूप से अधिक मुखर, दृढ़ और प्रासंगिक हैं। आज फिर से कबीर से हमें प्रेरणा लेनी है। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' (फासीवाद) की उन्मादी, असहिष्णु और स्वप्नहीन विचारधारा से हम तभी लड़ सकते हैं जबकि कबीर की मानवतावादी, असांप्रदायिक और

द्वेष-रहित विचारधारा और साहस हमारे पास हो।

डॉ. वीर भारत तलवार ने अपनी चिंता जतायी कि आज हम ऐसे समय में रह रहे हैं जब "किसी भी तरह की धार्मिक आलोचना का बर्दाश्त किया जाना मुश्किल हो गया है। 'धार्मिक भावनाएं आहत होती हैं।' कहकर आज किसी भी किताब, फिल्म और नाटक के खिलाफ आन्दोलन खड़ा कर दिया जाता है। धर्म पर जैसे कुछ भी बोलने की मनाही हो गयी है। यह फासीवाद से भिन्न नहीं है। विचारों की संकीर्ण सीमाएँ बाँधने की कोशिश आज बहुत प्रबल हो चुकी हैं।" ऐसे भय के वातावरण में न तो सृजनात्मकता पनप सकती है, न लोकतंत्र और न ही मनुष्य का विकास हो सकता है।

डॉ. तलवार ने कहा कि ऐसी क्रूर, आलोचना-विरोधी और कठिन परिस्थितियों में जिन दो महापुरुषों से प्रेरणा लेकर मनुष्यता और सृजनात्मकता को बचाया जा सकता है, वे हैं —भक्तिकाल के कबीर और आधुनिक युग के गाँधीजी।

अन्त में, उन्होंने कहा, "आज हम जो धर्मनिरपेक्ष राजनीति करना चाहते हैं, उसका मूलाधार कबीर के इस विचार में है कि ईश्वर मनुष्य के हृदय में है। यह (धर्म) व्यक्ति का निजी मामला है। उसके लिए जुलूस निकालने की जरूरत नहीं है।"

संगोष्ठी के अन्त में अतिथि वक्ता अभिलाष दास ने अपने विचार रखे। उन्होंने कहा, "कबीर एक ऐसे संत हैं जो इस झंझावात में भी स्वर्ण स्तम्भ की तरह खड़े हैं। आज के विज्ञान के इस युग में लोग कमरे के अन्दर मीटिंग में सत्य नहीं कह पाते हैं। लेकिन कबीर में कितना साहस था कि काशी में पंडितों के बीच रहते हुए भी जो सत्य समझते, उसे ही गाते थे। डरते नहीं थे। वे कहते थे, "औरों के छूने मात्र से तुम (ब्राह्मण) मंत्र पढ़ते हो, तुम से नीचा कौन है।"

वर्णव्यवस्था की आलोचना करते हुए अभिलाष दास ने कहा, "कुछ लोग जगद्गुरु बनते हैं। वे अपने ही लोगों में से अधिकांश को अछूत मानते हैं। कैसे जगद्गुरु हैं ये! वर्णव्यवस्था के कुचक्र ने इंसान को इंसान नहीं समझा। मनुष्य का अवमूल्यन सबसे बड़ी हत्या है। तलवार से यदि हम किसी की हत्या करते हैं तो केवल देह की हत्या होती है। लेकिन जब हम जाति पूछकर किसी का मूल्यांकन करते हैं तो उसकी आत्मा की हत्या होती है। उसके व्यक्तित्व की हत्या होती है। यही कबीर को खलता था।"

अभिलाष जी ने कहा, "कबीर का धर्म मानवता का धर्म है। जब तक मैं हिन्दू समाज में था तब तक वेदशास्त्र, राम, कृष्ण, विष्णु और शिव मेरे देवता थे। हिन्दू समाज मेरा समाज था। लेकिन जब मुझे कबीर की दृष्टि मिली तो पूरी मानवता मेरी हो गयी।"

शील, करुणा, क्षमा, दया और समता धर्म के मूल तत्व हैं। ये कबीर के धर्म में मिलते हैं। आजकल कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दुत्व खतरे में है। लेकिन, "मैं कहता हूँ कि सबसे बड़ा खतरा तुम स्वयं ही हो।" राष्ट्र और धर्म को साम्प्रदायिक और उन्मादक रूप देने वाले लोगों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि, "राष्ट्र जमीन है तो चन्द्रलोक भी राष्ट्र है। राष्ट्र केवल जमीन नहीं है। यह मनुष्य राष्ट्र है। एक ही वर्ग एक देश में रहना चाहे, यह भावना दुर्भाग्यपूर्ण है। कभी भी ऐसा नहीं रहा।"

उन्होंने धार्मिक शोषण पर भी खुलकर प्रहार किया। "धार्मिक शोषण अत्यन्त सूक्ष्म होता है। वह मनुष्य की बुद्धि को पंगु बना देता है।" कुछ लोग कहते हैं कि क्रान्तिकारियों ने खूब हत्याएँ की हैं। मार्क्स के उद्देश्य से बहुत हत्याएँ हुई हैं। लेकिन इन भगवान और धर्म मानने वालों ने तो अधिकतम हत्याएँ की हैं। मार्क्स मनुष्यता का पक्षधर था। ये धार्मिक किसके पक्षधर थे!

कबीर साहित्य के गंभीर अध्येता और लगभग 100 से ज्यादा पुस्तकें लिख चुके अभिलाष दास ने अन्त में इस अकादमिक उदासीनता की ओर ध्यान दिलाया कि कबीर के मूल ग्रन्थ 'बीजक' पर विद्वानों ने बहुत कम ध्यान दिया है। कबीर की प्रक्षिप्त वाणियों को ही पढ़ाया जाता रहा है। अब 'बीजक' की कुछ सुध ली जा रही है। ■

राजधानी दिल्ली की महरौली क्षेत्र में भाटी माइन्स का इलाका पड़ता है। यहाँ की खानों से निकला हुआ बदरपुर रिहायशी मकान बनाने हेतु दिल्ली और इसके चारों तरफ भेजा जाता था। खान में बदरपुर की खुदाई, ढुलाई और ट्रकों पर लादने का काम पाकिस्तान से विस्थापित 'ओड़' जाति के लोग करते थे। इस खान की समस्याएँ कई बार लोकसभा एवं राज्यसभा में उठाई गई हैं। एक बड़ी दुर्घटना के बाद विगत कुछ वर्षों पूर्व इन खानों से बदरपुर निकालने का काम बन्द कर दिया गया है। नतीजन ओड़ जाति के ये लोग जिनका परम्परागत यही धन्धा रहा है, आज बड़ी विषम परिस्थितियों में रह रहे हैं।

दिनाँक 4/12/02 को डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय एवं सूरज देव बसंत ने 'बूधन' की ओर से इस क्षेत्र का दौरा कर लोगों से उनकी समस्याओं को जानने का प्रयास किया। प्रस्तुत है इसी यात्रा पर आधारित एक रपट।

भाटी माइन्स की यात्रा

■ डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

हमने प्रातः ही महरौली की बस पकड़ी। कुतुबमीनार के पास हम उतर गए। पूछने पर मालूम हुआ कि भाटी माइन्स के लिए महरौली से सीधी बसें मिलती है। कोई 14 कि.मी. की दूरी होगी। हम बस में बैठ गए। जब बस छतरपुर मंदिर को छोड़कर आगे बढ़ी तो दृश्य पहाड़ी रूप लेने लगा। कब बदला पता नहीं चला। शायद सड़क की दोनों ओर बस्तियाँ होने के कारण ऐसा हुआ। आगे सड़क के दोनों तरफ फार्म हाउस मिले और उनसे दूर स्लेटी रंग लिए सफेद पत्थर दिख रहे थे। सड़क के किनारे पत्थरों से बने राजस्थान जैसे घर भी दिखाई पड़ रहे थे।

हम जल्दी ही भाटी माइन्स पहुँच गए। बस अड्डे से हम लोग माइन्स की तरफ चल पड़े। माइन्स से पहले ही हमें ओड़ जाति के लोगों की बस्ती मिली। उसी बस्ती में हमारी मुलाकात श्री दिलवर सिंह से हुई। श्री दिलवर सिह ने हमें बताया कि दिल्ली में जहाँ भी खुदाई का काम होता है हम लोग ही करते हैं। यह हमारा पुस्तैनी धंधा है। उन्होंने हमें दो खानें दिखाई और बताया कि इनमें से एक खान में एक ट्रक

भाटी माइन्स बस्ती में ओड़ जनजाति लोगों के बीच 'बूधन' के सम्पादक डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

गिर गया था जिसमें आठ लोगों की मौत हो गई थी। वहीं से हमारी समस्या शुरू हुई थी। हम लोग उनकी व्यथा-कथा तसल्ली से बैठकर सुनने की बात कहकर आगे बढ़े। इलाके को देखते हुए एक पहाड़ी तक गए और वहाँ से हमने सामने वाली खान का फोटो लिया। वापसी में उन्होंने हमें बताया कि अब यहाँ पर फौजी रहते हैं। हमने उस स्थान पर जाकर देखा कि इलाका घिरा हुआ था और राजपूत बटालियन का एक बोर्ड लगा हुआ था। इस बोर्ड पर लिखा हुआ था कि 71300 पौधे लगाए जा चुके हैं। कीकर की पेड़ों और बेर की झाड़ियों से भरे इस इलाके में पेड़ लगाने की क्या आवश्यकता पड़ी हमें समझ में नहीं आया।

हम वापस बस्ती में पहुँचे जहाँ बड़े-बुजुर्गों से बात हुई। इस चर्चा के दौरान जो बातें उभरी वे मोटे तौर पर इस प्रकार हैं।

ओड़ जाति के लोग पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत आए। पाकिस्तान में ये लोग खेतिहर थे। परन्तु बंटवारे के बाद ये लोग विस्थापित स्थिति में भटक रहे थे। खुदाई करने में इसको महारथ हासिल था। यही कारण था कि इनके अनेक परिवार राजस्थान की इन्दिरा गाँधी नहर की खुदाई में लग गए। खुदाई का काम करते हुए वे राजस्थान के कई जिलों सहित पंजाब एवं उनके कहे अनुसार हिमाचल भी गए। काम की ही तलाश में यह लोग गंगानगर इत्यादि इलाकों से दिल्ली पहुँचे। तब यह इलाका जंगली था और 'दिल्ली राज्य औद्योगिक विकास परिषद' के अधीन था। यहाँ की खुदाई का काम इनकी योग्यता के अनुसार था। इनके पास ढोने के लिए खच्चर और गदहे भी थे। इस तरह ये लोग खान मजदूर में परिवर्तित हो गए। इनके जीवन को बेहतर बनाने का एक मात्र प्रयास (इनके कहे अनुसार) संजय गाँधी ने इनके लिए 200 घर बनवाकर किया।

दुर्घटना के बाद यह स्थान नेताओं और बाहरी लोगों के हस्तक्षेप का अड्डा बन गया। श्री रामविलास पासवान के मंत्रित्वकाल में इन खानों की खुदाई बन्द करवा दी गई। चूँकि इनमें काम कर रहे ओड़ जाति के लोगों के लिए कमाई का कोई और जरिया नहीं था, अत: अब वे बेकारी की तरफ धकेल दिए गए। इस बीच दिल्ली राज्य औद्योगिक विकास परिषद् ने इस हजारों एकड़ इलाके को दिल्ली राज्य खान विकास परिषद् को दे दिया और जिसने इसे वन विभाग को दे दिया। लगता है इसी के अन्तर्गत फौज के लोग यहाँ आकर पौध रोपने का काम करने लगे।

ओड़ लोगों के पास दिल्ली राज्य खान विकास परिषद् के परिचय पत्र मौजूद हैं। परन्तु अब वन विभाग कहता है कि आप लोग यहाँ गैरकानूनी तरीके से रह रहे हैं। यह सारा गाँव गिरेगा। यही नहीं हमने देखा कि टैंकरों से ढो-ढोकर पेड़ों में पानी डालने का काम किया जा रहा था। वहीं ओड़ लोग पानी के लिए मोहताज थे और खरीदकर पी रहे थे। समझ में नहीं आता कि जब यह इलाका जंगली था और वहाँ जाकर कोई रहने के लिए तैयार नहीं था तब इन ओड़ जाति के लोगों ने खानों से बदरपुर निकालने, ढुलाई करने का महत्वपूर्ण काम किया। और आज जबकि इस काम की जरूरत नहीं रही, तो इनकी रिहाइश को भी गैर कानूनी करार दे रहे हैं। यह कहाँ तक न्याय संगत है। बस्ती के लोग हुनर वाले हैं और काम करने की प्रबल इच्छा रखते हैं। कोई बोरिंग का काम जानता है, तो कोई मोटर रिपेयरिंग का। खुदाई करना तो उनका पारम्परिक पेशा ही है। परन्तु एक बार बस से दिल्ली आने-जाने में ही चालीस रुपये खर्च हो जाते हैं तो खाने के लिए क्या बचेगा। उचित तो यह होता कि उनके हुनर का उपयोग किया जाता, उनकी मलिन बस्तियों को सुन्दर बनाया जाता और उनकी न्यायसंगत माँगों को पूरा कर अच्छा जीवन दिया जाता।

परन्तु हमारा यह सभ्य समाज विस्थापित इन लोगों को दुबारा विस्थापित करने पर आमादा है। इतिहास इसे कभी माफ नहीं करेगा। ■

(उपरोक्त वर्णन वहाँ के लोगों के साथ हुई बातचीत पर आधारित है।)

सांसी बस्ती में एक दिन

■ सूरज देव बसंत

तथाकथित अपराधी जनजातियों में सांसी, पारधी, बावरिया जनजतियों पर पुलिस अत्याचार ज्यादा ही हुआ है। सभ्य समाज की वर्तमान सोच में अनेक कारणों से ये जातियाँ किसी चोरी इत्यादि घटनाओं के बाद शंका के घेरे में आ जाती हैं। आम लोगों की सोच में इन जातियों के लोग रात के अन्धेरे में चोरी कर भाग जाते हैं। यह बात खूब प्रचारित है और समाचार पत्रों को पढ़ने के बाद कम ही लोग जानते होंगे कि यह सब एक बड़ा असत्य है। दिल्ली के अन्दर ही इन जाति के लोगों की बस्तियाँ हैं। जहाँ ये अपना रोजमर्रा का जीवन व्यतीत करते हैं। उनके बच्चे भी और लोगों के बच्चों की तरह पढ़ते-लिखते हैं और कई तो विश्वविद्यालय की शिक्षा भी प्राप्त किए हुए हैं। इनमें सरकारी अधिकारी हैं, डॉक्टर, वकील और यहाँ

दिल्ली की एक सांसी बस्ती।

तक कि पुलिस प्रशासन में भी हैं।

सांसी लोगों की एक ऐसी ही बस्ती मंगोलपुरी में हैं। 'बूधन' की तरफ से 15 जनवरी, 2003 को मैंने इन लोगों के बीच एक दिन बिताया।

दिल्ली की आम बस्तियों की तरह ही मंगोलपुरी का यह इलाका है। लोग अपने रोजमर्रा के दैनिक कार्यों में जुटे हैं। गलियों से गुजरते वही आम चेहरे। इन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता कि ये लोग सांसी हैं। जिन्हें पुलिस और अखबार वालों ने तथाकथित अपराधी जाति कहकर मुख्यधारा के लोगों से अलग-थलग कर दिया है। यहाँ हमारी मुलाकात कई सांसी युवाओं, नेता, महिलाओं और बुजुर्गों से हुई। सबकी समस्या और शिकायत कमोबेश एक ही थी-'पुलिस हमें जीने नहीं देती। हम पर लगातार अत्याचार करती है। हम सभी रोजगार चाहते हैं, हमें कोई काम नहीं देता।' ये लोग चाहते हैं कि हमें अवसर दिया जाए तो हम भी वह सब कुछ कर सकते हैं जो मुख्यधारा के लोग कर रहे हैं। हम भी अपनी पत्रिकाएँ निकालना चाहते हैं। हम भी पुस्तकालय चाहते हैं जहाँ हमारे लोग सुबह-शाम पुस्तकें पढ़ सकें, आपस में मिल-जुलकर, संगठित होकर अपने समाज के विकास की बात कर सकें। राजेश कुमार बताते हैं कि उसके लोग भी अच्छे पदों पर हैं किन्तु तथाकथित अपराधी जनजाति होने से वे खुलकर सामने नहीं आते। विगत दिनों राजेश कुमार ने शर्ट का कालर बनाने की दुकान खोली। उसने मेहनत की। दुकान अच्छी चलने लगी। लेकिन प्रतिस्पर्धी दुकानदारों ने अफवाहें फैलानी शुरू की। यह अपराधी जाति का है, कहकर बदनाम करने लगे। नतीजा सामने था। उसकी दुकान धीरे-धीरे सिमटने लगी और राजेश एक बार फिर बेकार हो गया। डी-456 निवासी श्री अजमेर सिंह मुखिया का कहना है कि पुलिसवाले उन्हें बराबर तंग करते हैं। जिनके ऊपर

आज तक एक भी केस दर्ज नहीं है, उस पर भी बी.सी. एक्ट (बैड कैरेक्टर एक्ट) लगाने की धमकी दी जाती है और परेशान किया जाता है। वे बताते हैं कि ऐसे लोग भी हैं जिन पर बेवजह पुलिस 20-20 सालों से बी.सी. एक्ट लगा रखी है और गाहे-बगाहे जब मर्जी हुई, लॉक-अप के अन्दर कर दिया। फिर बिना कुछ लिए-दिए घर वापसी असंभव होता है। उन्होंने पूछा कि यह कहाँ का कानून है कि 20 साल की लड़की को बी० सी० एक्ट लगाकर तड़ीपार की धमकी दी जाती है। उन्होंने बताया कि कुछ लोग यदि ऐसे हैं जिनके ऊपर किसी कारण से कभी मुकदमा चला भी हो मगर वे पुराना काम छोड़कर कुछ अच्छा करना चाहते हैं तो पुलिस उन्हें वैसा नहीं करने देती। क्योंकि इससे उनका हफ्ता और माहवारी बन्द हो जाता है।

यहाँ हमारी मुलाकात राजेन्द्र माहला, जोगेन्द्र सिंह माहला, इन्द्र कुमार कारखोड़ा, कैलाश लान्डा आदि युवाओं से होती है। ये सभी कहीं न कहीं दिहाड़ी पर या कारखानों में काम कर रहे हैं। शाम को थककर घर आते हैं, फिर सुबह काम पर जाते हैं। ये शांति से जी रहे हैं। मगर इनकी भी वही शिकायत- 'हम अपराधी हैं नहीं मगर मानो सांसी होना अपराध हो गया। इतिहास में हमारे लोग लड़ाका जाति के थे। अंग्रेजों से हमारे पूवजों ने लड़ाई की थी। मगर उन्होंने हमें जो अपराधी कहा तो मानो वह कलंक ही बन गया।'

श्री सूरजपाल नांगिया अपने समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। इन्होंने हमें कई स्तर के लोगों से मिलवाया। इनके घरों में ले गए। श्री नांगिया ने बताया कि हमारी पुरानी पीढ़ी अधिकांशतः असाक्षर है। यह कोर्ट, कचहरी और थाने से डरती है। इन्हें कानून का भय दिखाना आसान होता था। लेकिन नई पीढ़ी पढ़ी-लिखी है। वह देश दुनिया की तमाम खबरों और परिवर्तनों से वाकिफ है। उन्होंने बताया कि हमारे समाज की सबसे बड़ी कमी संगठन का अभाव है। लेकिन हम लोग प्रयत्नशील हैं कि अपने समाज के बुद्धिजीवियों को संगठित कर समाज के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करें। हमारे पास योजनाएँ भी हैं। सबसे पहले हमें अपने लागों को जागरूक बनाना है। श्री नांगिया को लगता है कि राजनीतिक पटल पर किसी बड़े सांसी नेता का अभाव भी इनके पिछड़ेपन का कारण है। इसके अलावा कुछ सामाजिक बुराइयाँ भी हैं जिससे इनका समाज उबर नहीं पाया है।

सांसियों की इस बस्ती में उनके बीच एक दिन जहाँ सुखद रहा, वहीं इनकी सदियों से त्रासदी और समस्याओं को देखकर गहरा दु:ख भी हुआ। किन्तु इनके संघर्ष और आत्मविश्वास को देखकर यह भी लगा कि एक न एक दिन ये भी मुख्यधारा के लोगों के बीच तन पर खड़ा हो सकेंगे और तब इन्हें हाशिए पर धकेलने के अपराध का हमें पश्चाताप करना होगा। ■

एजेंट बनें :

अनेक जगहों से हमें पाठकों की शिकायत मिली है कि 'बूधन' उन्हें उनके शहर में नहीं मिल पा रही है। पाठकों की शिकायत को ध्यान में रखते हुए हम एजेण्ट नियुक्त करना चाहते हैं। एजेंसी के लिए कृपया हमारे कार्यालय से संपर्क करें अथवा लिखें। —संपादक

बूधन प्राप्त करें :

1. **वाणी प्रकाशन बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, मंडी हाउस, नई दिल्ली**
2. **पुस्तक मंडप, स्टॉल नं 3, कला संकाय (दिल्ली विश्वविद्यालय नार्थ कैम्पस)**
3. **पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जी-2 कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001**
4. **गीता बुक सेंटर, शापिंग कॉम्पलेक्स, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय परिसर, नयी दिल्ली-67**

जंगल में सुरक्षा की तलाश

■ हेमलता मृत्युंजय

असुरक्षा के घेरे में पलता जीवन अपनी सुरक्षा की तलाश असुरक्षित, आतंकित परिधि में कैसे करे? यह प्रश्न कचोटता रहता है उस जीवन को जो असुरक्षा व सुरक्षा के बीच संघर्ष करते हुए अपने अस्तित्व को ढूँढ रहा है। एक ओर बुद्धिजीवियों ने अपने अधिकारों को इतना विस्तृत कर दिया कि स्वेच्छाचारिता और अधिकार की सीमा धुँधली होकर अदृश्य हो गई। दूसरी ओर वंचित लोग मूलभूत अधिकारों से परिचित ही नहीं हैं। 'मुक्तिधारा' समाज के ऐसे वर्ग के साथ कार्य कर रही है जो मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं रोटी, कपड़ा और मकान जिनका सपना है। जिसे साकार करने के लिए यह वर्ग संघर्षरत है। समाज में घुमन्तू बने लोग जो कि समाज की मुख्यधारा से कटे हुए हैं आज भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। ये घुमन्तू जातियाँ अरावली क्षेत्र में गाड़ियाँ लुहार, नट, बंजारा, भोंपा, बावरिया, खुरपंखा आदि नामों से जानी जाती है। प्रस्तुत है कहानी अपनी जुबानी जो बताती है संघर्ष का अर्थ और समझाती है इसका भाव।

30 वर्षीय ककुआ मध्य प्रदेश राज्य के शायपुर ग्राम में चम्बल के बीहड़ जंगल में जीवन की तलाश में है। ककुआ बंजारा कबीले से है जो शायपुर में 10-12 कबीलों के साथ रहती है। ककुआ का पति सेठाराम कबीले का परम्परागत व्यवसाय (पशुओं का व्यापार) करता है। ककुआ के एक वर्षीय पुत्र रमेश है जो माँ के साथ संघर्ष को अपने संस्कारों में उतार रहा है। चम्बल के घेरे में लुटेरों, डाकुओं व असामाजिक तत्वों का आतंक है। ककुआ अपना अस्तित्व बनाए रखने के साथ-साथ आतंक का सामना करते हुए दोहरा संघर्ष कर रही है। ककुआ जैसे तैसे तन ढकने के लिए कपड़े बनवाती तो है पर मन में दहशत रहती है किसी भी पल उनके राख के ढेर में बदलने की। हादसे तो अकसर इसके साथ घटते रहते हैं। कुछ समय पहले ककुआ का पति सेठाराम व्यापार से रुपये कमाकर लाया किंतु घर पहुँचने से पहले बंदूक की नोक पर लूट लिया गया। अनेक बार बेटे रमेश को अगुआ बनाकर ककुआ के शरीर के गहने उतरवाए गए। आज ककुआ स्वयं कह रही है "घणी बार सरसूँरा खेताँ मैं आखांयाँ री नींद सोंवा" ककुआ गर्भवती काल में भाग-दौड़ में परहेज होने के कारण संघर्ष से दूर अरावली की तलहटी में बसे खोदरीबा, धोली खान अपनी भाभी के घर आई हुई है। ककुआ वहाँ अपने बीते दिनों को याद कर अनेक बार डाकुओं द्वारा अपने झोपड़े जलाये जाने की बात कहती है। भाभी के घर रहकर भी ककुआ अपने पति के साथ कोई हादसा के डर से भयभीत है। ककुआ को हर समय मौत का तांडव नजर आता है। अत: ककुआ चम्बल के बीहड़ जंगल से पलायन कर राजस्थान में अमन की जिन्दगी के लिए धोली खान आकर बसना चाहती है।

अपनी सुरक्षा के लिए उठाए गए इस कदम में 'मुक्तिधारा' उसकी सहयोगी है तथा राज्य सरकार से इसको घर बनवाकर मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराए जाने की अपील करती है। ■

सहयोग राशि

	व्यक्तिगत	संस्थागत
आजीवन	1500 रु. ☐	3000 रु. ☐
त्रैवार्षिक	160 रु. ☐	300 रु. ☐
द्विवार्षिक	110 रु. ☐	220 रु. ☐
वार्षिक	60 रु. ☐	120 रु. ☐

कृपया अपना सहयोग राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर द्वारा (Mahapandit Rahul Sankrityayan Pratishthan) 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान' के पक्ष में भेजें, जो 'नई दिल्ली' में देय होना चाहिए।

राजस्थान के घुमन्तू कबीलों में मुक्तिधारा का लोक-अभियान

■ रतन कात्यायनी

राष्ट्र के सुदूर पश्चिमी छोर पर अरावली के संरक्षण ने यायावर खानाबदोशी जिन्दगी गुजर बसर कर रहे असंख्य कबीलों का शताब्दियों से पोषण किया है। पानी के झरनों, पशुओं के चारागाहों और जनसंख्या के कम दबाव ने घुमन्तू जातियों को यहाँ जीवन यापन करने की अनुकूल परिस्थितियाँ दी है। समूची दुनिया में घुमन्तू कबीलों को प्रकृति के अनुकूल हालातों ने ही सहयोग किया है। आज यूरोप महाद्वीप के विस्तृत भूभाग पर विद्यमान रोमा जिप्सीज का अस्तित्व मूल रूप से राजस्थान से शताब्दियों पहले निर्वासित वंशजों के रूप में सक्रिय बना हुआ है, जो शताब्दियों पहले बाहरी आक्रमणकारी के साथ गुलाम के रूप में भारत से बाहर निकले हैं।

प्राचीन भारत में घुमन्तू कबीलों के लिए सभी दृष्टियों से अनुकूल हालात थे। जहाँ घुमन्तू जातियों के लिए न केवल वन और भूमियाँ उपलब्ध थी बल्कि सामाजिक स्तर पर भी मूल्य, न्याय, विश्वास और परस्पर प्रेम का गहरा स्थान था। इन परिस्थितियाँन्तर्गत भारतीय समाज में घुमन्तू बनी जातियों के सामाजिक मूल्यों का कदम-कदम पर सम्मान था। बस इसी ताकत के सहारे घुमन्तू जातियों ने प्राचीन भारत में एकता, शांतिमयता, अखण्डता और विकास प्रक्रिया में सहयोग देते हुए अपनी गौरवशाली भूमिकाएँ अदा की है। जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजी सल्तनत के विरुद्ध सबसे पहले आवाज उठाने वाले समूहों के रूप में घुमन्तू जातियों ने आजादी के आन्दोलन की शुरुआत तक की थी।

वर्तमान हालातों में घुमन्तू बने होने के कारण शैक्षणिक ज्ञान से वंचित ये जातियाँ वैश्वीकरण के दौड़ में पिछड़ गई हैं। और पिछड़ने का यह फासला बड़ी तेजी से प्रतिदिन गहरा होता जा रहा है जो आज कल्पना से भी बाहर हो गया है।

भारत के आजादी आन्दोलन में ही नेतृत्व की लड़ाई ने इन्हें भूला सा दिया था। जो उपेक्षा आजादी मिलने के बाद और अधिक हुई। आजाद भारत में बड़े सोचे समझे अपराधिक षड्यन्त्र के द्वारा इन कबीलों को सर्वाधिक उत्पीड़न का शिकार किया गया है। आजाद भारत का बनने वाला संविधान ने ही इन्हें सर्वप्रथम आजाद राष्ट्र में भूलाया। जिसके परिणामस्वरूप बाबा साहब अम्बेडकर के नेतृत्व में बनी संविधान निर्माण कमेटी में इन DNT's को स्थान नहीं मिला जिसके कारण भारत के संविधान से बनने वाली लोक कल्याणकारी सरकार ने इन्हें खुले आम भूला दिया है। और इतना ही नहीं आजादी के 56 वर्ष में होने वाले संविधान संशोधन की श्रृंखलाओं में भी घुमन्तू कबीलों के नागरिक अधिकारों के कहीं कोई स्थान नहीं मिला। परिणामस्वरूप दर-दर की ठोकरें खाते फिर रहे वंचित कबीलों को आजादी संविधान की पहुँच और राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया से अलग-थलग कर दिया है।

आज देश में अपने मानवाधिकारों एवं संवैधानिक हक-अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे घुमन्तू कबीलों का अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ है। इनके लिए भारत की आजादी, संविधान की पहुँच और विकास प्रक्रिया सब कुछ बेमानी हो गई है। यह राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 200 जातियों में बिखरे लगभग 5 करोड़ लोगों के अस्तित्व का सवाल है। अरावली की घाटियों में 'यह आजादी झूठी है' एवं 'जो जमीन सरकारी है वो जमीन हमारी है' के लोक प्रसिद्ध नारों के साथ मुक्तिधारा ने एक सामाजिक आवाज खड़ी की है। इसके परिणामस्वरूप उत्तरी-पूर्वी राजस्थान के छोर पर लगभग 80 स्थानों पर लगभग 40 हजार लोग पहली बार बसे हैं। इस प्रकार अरावली की तलहटी में सामुदायिक सहयोग और सामाजिक प्रेरणा से स्वावलम्बनमयी स्थाई सामाजिक पुनर्वास बने हैं। इन समुदायों में मुख्य रूप से बंजारा , बावरिया, भोपा, नट,

सपेरा एवं गाड़िया लुहार समुदाय हैं।

वोट की राजनीति करने वाले, समाज के पूँजीपति और जाति धर्म के नाम पर अपना रोजगार करने वाले वर्ग ने इन कबीलों पर राजस्थान में खुले अत्याचार किये हैं। मुक्तिधारा की चेतना पर अपने नागरिक अधिकारों की आवाज उठानेवाले इन बस्तीवासियों पर अत्याचार किए जाते रहे हैं। अनेकों बस्तियों में खुले आम आग लगाई गई है। माँ बहिनों के साथ बलात्कार किए गए हैं तथा अनगिनत जुल्म ढाए गए हैं। किन्तु सामाजिक, आर्थिक कारणों से त्रस्त इन कबीलों ने अरावली में लगभग 50 हजार बीघा भूमि पर कब्जा कर स्थाई बसने का अभिनव प्रयोग किया है। जो प्रदेश स्तर पर आज राज्य सरकार तथा सामाजिक क्षेत्रों में चर्चा का विषय बना हुआ है।

मुक्तिधारा ने जनहित के इस सवाल पर घुमन्तू जातियों के प्रतिनिधियों के साथ शासन और समाज में संवेदना जगाने का महाअभियान शुरू किया है। जिसमें अनेकों बार पदयात्राएँ, आन्दोलन, धरने, संवाद-वार्ता/संगोष्ठियाँ की गई है। लोक-कल्याणकारी सरकार के दरवाजे पर मुक्तिधारा और इन प्रतिनिधियों ने संपर्क कर राज्य के राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी जी सहित पूर्व राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन से इस प्रश्न पर संवाद किया जा चुका है। समय-समय पर उत्पीड़न के खिलाफ माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय तक से अनेकों सहयोगी आदेश प्राप्त किए हैं। किन्तु खेद है आज भी राज्य में हालात घुमन्तू जातियों के अनुकूल होना तो दूर, राज्य में संवेदना तक नहीं है, जिससे लाखों-लाख लोग नागरिक अधिकारों से वंचित बने हुए नारकीय जीवन जीने को मजबूर बने हुए हैं।

दर्जनों स्थानों पर इन कबीलों द्वारा अपने ही प्रयासों से स्थाई बसने के बाद भी आवास का अधिकार तक नहीं मिल पाया है। पीने का पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, बैंक ऋण जैसी मूलभूत सुविधाओं के लिए घुमन्तू जातियों के ये लोग तरस रहे हैं। ■

राष्ट्रपति की चेतावनी

"...ऐसा न हो कि आने वाली पीढ़ियाँ यह कहें कि भारतीय गणतंत्र का निर्माण हरित धरती और उन मासूम आदिवासियों के विनाश की नींव पर हुआ था जो वहाँ सदियों से निवास कर रहे थे। एक महान समाजवादी नेता ने एक बार कहा था कि दुनिया को बदलने की जल्दबाजी में कोई महान व्यक्ति किसी बच्चे को टक्कर मार कर गिरा देता है, तो वह भी अपराध करता है। भारत के बारे में भी यह कहने की नौबत न आये कि अपने विकास की हड़बड़ी में इस महान गणतंत्र ने हरित धरती माता को नष्ट-भ्रष्ट किया और अपने आदिवासी समाजों को उजाड़ा है।..."

(गणतंत्र दिवस 2001 के अवसर पर राष्ट्र के नाम संदेश से)

सहयात्री पत्रिकाएँ

1. **पहल** :- ज्ञानरंजन, 101, राम नगर, आधारताल, जबलपुर (म०प्र०)-482004
2. **कथन** :- रमेश उपाध्याय, 107, साक्षरा अपार्टमेंट, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
3. **समकालीन सृजन** :- श्री शंभुनाथ, 20, बालमुकुन्द मक्कर रोड, कलकता-700007
4. **संधान** :- सुभाष गाताड़े, बी 2/51, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110085
5. **कृति ओर** :- विजेन्द्र, सी-133, वैशाली नगर, जयपुर (राजस्थान)
6. **सम्बोधन** :- कमर मेवाड़ी, चाँदपोल, कांकरोली, राजसमन्द-313324 (राजस्थान)
7. **शेष** :- हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहारपुरा, जोधपुर-342002
8. **साम्य** :- विजय गुप्त, ब्रह्मरोड, अम्बिकापुर-497001 (म०प्र०)
9. **अलाव** :- रामकुमार कृषक, सी-3/59, सातदपुर विस्तार, करावल नगर, दिल्ली-110094
10. **समयान्तर** :- पंकज बिष्ट, 79-ए, दिलशाद गार्डेन-दिल्ली 110095
11. **वर्तमान साहित्य** :- विभूति नारायण राय, प्रथम तल, 1-2 मुकुन्द नगर, हापुड़ रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)
12. **युद्धरत आम आदमी** :- रमणिका गुप्ता, प्रणेश कुमार, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग
13. **कल के लिए** :- जयनारायण, अनुभूति प्लानिंग कॉलोनी के पीछे, सिविल लाइंस, बहराइच (उ०प्र०)
14. **इतिहास बोध** :- लाल बहादुर वर्मा, 1496 किदवई नगर, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006
15. **दायित्व बोध** :- विश्वनाथ मिश्र, ने.पी.जी. कॉलेज, बड़हलगंज, गोरखपुर (उ०प्र०)
16. **छात्र संग्राम** :- निशान्त, पो. बा. 5, फे. ऑ.-भेटिया पड़ाव, हल्द्वानी, उ.प्र.
17. **सापेक्ष**:- महावीर अग्रवाल, एच-24/8, सिविल लाइन, कसारीडीह, दुर्ग-491001
18. **संदर्श** :- सुधीर विद्यार्थी, शंकर नगर, बीसलपुर, पीलीभीत-262201
19. **नया पथ** :- राजेश जोशी एम.आई.जी. 99, सरस्वती नगर, जवाहर चौक, भोपाल (म०प्र०)
20. **हंस** :- राजेन्द्र यादव, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
21. **दस्तावेज** :- विश्वनाथ प्र० तिवारी, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ०प्र०)
22. **निष्कर्ष** :- गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, 59, खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर-228001
23. **सामयिक वार्ता** :-राजेन्द्र राजन, सी-28, गली न. 8ए, पश्चिम विनोद नगर, दिल्ली-110092
24. **सर्वनाम** :- विष्णुचंद्र शर्मा, ई-2 सादतपुर, दिल्ली-110094
25. **जयलोक** :- जयंत वर्मा, सेवा सदन, पोलीपाथर, नर्मदा रोड, जबलपुर-482008
26. **नीति मार्ग** :- जयंत वर्मा, 4-एम आई जी, त्रिवेणी कॉम्पलेक्स, रोशनपुरा, टीटी नगर, भोपाल-462003
27. **अरावली उद्घोष** :-हरिराम मीणा, 31, शिव शक्ति नगर, किंग्स रोड, अजमेर हाई-वे, जयपुर-302019
28. **शैक्षिक सन्दर्भ** :- राजेश खिंदरी, एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद-461001
29. **कथादेश** : - हरिनारायण, सी-52/ जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095
30. **उद्भावना** : अजेय कुमार, ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095
31. **नटरंग** : नेमिचंद्र जैन, बी-31, स्वास्थ्य विहार, विकास मार्ग, दिल्ली-110092
32. **मड़ई** : डॉ. कालीचरण यादव, बनियापारा, जूना बिलासपुर, बिलासपुर, छत्तीसगढ़-495001
33. **ढोल** : अरुणा जोशी, भाषा संशोधन-प्रकाशन केंद्र, 6, यूनाइटेड एवन्यू, वड़ोदरा-390007

शुभकामनाओं के साथ

अन्सार एसोसिएट्स,

दिल्ली

सिविल कान्ट्रेक्टर, भवन निर्माता

भारतीय जीवन बीमा निगम

मोबाईल : 9811046736

With Best Compliments from:

Heritage Water Harvesting Co.

(Rainwater Harvesting Specialists)

H-195-A, Dilshad Garden, Delhi-110095

Ph.: (O): 011 - 2128479, 9868113349

E-mail: aksinha_3@ hotmail.com.

Contact for:

- **Rainwater Harvesting**
- **Boring & Reconditioning of bore wells**
- **Drip-irrigation**
- **Water-Management and the related problems**

About us:

Engineers	Contractors	Consultants

- **A professional agency offering services in the above fields.**
- Well versed with the methodology and having earned expertise in installation of 'Rainwater Harvesting System'.
- We have done pilot jobs for CGWB.
- **Registered with Central Ground Water Authority. (Regn. No. CGWA/DL/195)**

ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन ही नहीं, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन भी है

इतिहास की पुस्तकें

रोमिला थापर
अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन 350.00
आदिकालीन भारत की व्याख्या 185.00
वंश से राज्य तक 165.00
प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास 485.00/150

द्विजेंद्र नारायण झा
भारतीय सामंतवाद 750.00
प्राचीन भारत 265.00/50.00

अयोध्या सिंह
हिंदुस्तान का स्वाधीनता आंदोलन और कम्युनिस्ट 225.00/60.00
फासीवाद 575.00

रॉल्फ मिलीबैंड
पूंजीवादी समाज में राजसत्ता 450.00

इरफ़ान हबीब
भारतीय इतिहास की प्रमुख व्याख्याएं 125.00/40.00
भारतीय इतिहास में मध्यकाल 50.00

टॉमस एस. कुन
वैज्ञानिक क्रांतियों की संरचना 325.00

हेरॉल्ड जे. लास्की
कम्युनिस्ट घोषणापत्र 200.00

मोहित कुमार हालदार
भारतीय नवजागरण और पुनरुत्थानवादी चेतना 225.00

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
समाजवाद का सपना 650.00

स्वामी सहजानंद सरस्वती
खेत मजदूर और झारखंड के किसान 225.00/60.00
मेरा जीवन संघर्ष 550.00/200.00
क्रांति और संयुक्त मोर्चा 75.00
किसान कैसे लड़ते हैं? 40.00

वी.आई. लेनिन
साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था 225.00/60.00

मार्क्स और एंगेल्स
कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र 20.00

कार्ल मार्क्स
गोथा कार्यक्रम की आलोचना 35.00

हरपाल बराड़
सोवियत संघ का पतन 150.00

जे.डी. बरनाल
विज्ञान की सामाजिक भूमिका 985.00

बी. शेख अली
हैदर अली के साथ अंग्रेजों के संबंध 450.00

दामोदर धर्मानंद कोसंबी
मिथक और यथार्थ 450.00

रामशरण शर्मा
मध्य गंगाक्षेत्र में राज्य की संरचना 125.00

कृष्णकान्त मिश्र
समाजवादी चिंतन का इतिहास (तीन भागों का सेट) 1650.00

देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय
प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज 750.00

रविंदर कुमार
आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास 250.00

रजनी पाम दत्त
आज का भारत (अनु. रामविलास शर्मा) 850.00/200.00

रमेंद्रनाथ नंदी
प्राचीन भारत में धर्म के सामाजिक आधार 225.00

इक्ते हसन
मुगल साम्राज्य का केंद्रीय ढांचा 275.00

हरबंस मुखिया
फ्युडलिज्म और गैरयूरोपीय समाज 350.00

सुमित सरकार
बंगाल में स्वदेशी आंदोलन 650.00/200.00
सामाजिक इतिहास लेखन की चुनौती 625.00

दीपक कुमार
विज्ञान और भारत में अंग्रेजी राज 275.00

सतीश चंद्र
मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप 225.00

ग. कारचेदी
वर्ग विश्लेषण और सामाजिक अनुसंधान 350.00

मोहम्मद हबीब
दिल्ली सल्तनत का राजनीतिक सिद्धांत 450.00

आर्नल्ड हाउजर
कला का इतिहास दर्शन 500.00

अंतोनियो ग्राम्शी
सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार 985.00/250.00

विस्तृत जानकारी के लिए लिखें
ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092

करके उपयोग प्राकृतिक संसाधनों का करें निर्माण हरे–भरे संसार का

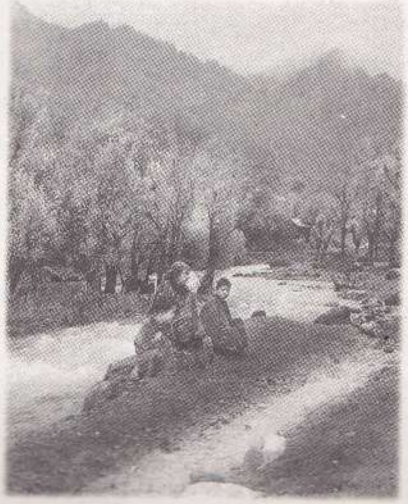

आम तौर पर जहाँ कहीं भी औद्योगिक गतिविधि होती है, पहली क्षति पर्यावरण की ही होती है।
बी.एच.ई.एल. में हम, टैक्नॉलॉजी तथा पर्यावरण के बीच एक सुन्दर सन्तुलन बनाये रखने का सदैव प्रयास करते हैं।
प्रकृति के संरक्षण हेतु, बी.एच.ई.एल., गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के उपयोग के लिये, नवीनतम् टैक्नॉलॉजी के विकास में अग्रणी रहा है।

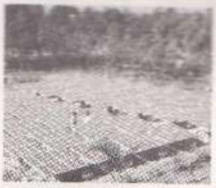

सूर्य
सौर फोटो वोल्टाइक/ वॉटर हीटिंग सिस्टम्स

पवन
विंड इलैक्ट्रिक जनरेटर्स

जल
पन बिजली जनरेटिंग सैट्स

बैटरी चलित वाहन

नई सहस्त्राब्दि में, नवीनतम् टैक्नॉलॉजियों द्वारा, पर्यावरण–अनुकूल समाधानों के लिये, सदैव प्रयासरत

बी एच ई एल
BHEL

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड

पंजीकृत कार्यालय : बी.एच.ई.एल. हाऊस, सिरी फोर्ट, नई दिल्ली–110049

बेहतर विश्व–निर्माण के प्रति वचनबद्ध

● पावर ● ट्राँसमिशन ● उद्योग ● परिवहन ● गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोत ● दूर–संचार

ASP/D/BHEL/2000

महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान

उद्देश्य

- न्यास महापंडित राहुल सांकृत्यायन की कृतियों पर अनुसंधान कार्य करेगा तथा उनके कार्यों पर किसी भी अनुसन्धान को सहायता एवं धन प्रदान करेगा एवं उसे प्रोन्नत करेगा।
- न्यास उन क्षेत्रों में जिनमें कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कार्य किया जैसे इतिहास एवं पुरातत्व, मानव प्रगति एवं विकास, यात्रा वृत्तांत-यायावरी, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, दर्शन, भाषा, विज्ञान एवं समाज तथा भारत विद्या के क्षेत्रों में शिक्षा एवं अनुसंधान का कार्य करेगा तथा इन विषयों में किये गये कार्यों को प्रोन्नत करेगा तथा धन एवं सहायता प्रदान करेगा।
- न्यास महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुरूप लोकचित्त पर से मिथ्या रूढ़ियों के जंजाल को दूर करने का प्रयास करेगा।
- न्यास महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा दिखाए गये भारतीय संस्कृति के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्वीकार करता है तथा न्यास इस दृष्टिकोण के प्रसार, प्रचार हेतु कदम उठाएगा जिससे कि आम भारतीय धर्मान्धता, रूढ़िवादिता और अज्ञानता से ऊपर उठकर एक ऐसा मानव बन सके जो अपने अच्छे-बुरे का फैसला स्वयं कर सके।
- न्यास मानव समाज के विकास का वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्वीकार कर विज्ञान एवं समाज के समन्वित विकास की ओर आम जनता का ध्यान आकर्षित करेगा। यह महापंडित राहुल सांकृत्यायन के उन उद्देश्य के अनुरूप होगा जिसके द्वारा वे समस्त मानव जाति को न्याय, समता, अन्न-वस्त्र और ज्ञानोपार्जन का सुयोग दिलवाना चाहते थे।
- न्यास महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा तिब्बत से लाए गये दुर्लभ एवं अनमोल ग्रंथों एव पाण्डुलिपियों को भोट भाषा से संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद एवं प्रकाशन की व्यवस्था कराएगा। न्यास महापंडित की अन्य पुस्तकों को भी विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवाद कराने एवं प्रकाशित करने/कराने की व्यवस्था करेगा। न्यास शीघ्र बिहार रिसर्च सोसायटी में महापंडित राहुल द्वारा दान दिये गये ग्रन्थों की माइक्रोफिल्मिंग का प्रबन्ध करेगा व इन्हें दिल्ली में स्थानान्तरण करवाने का प्रयत्न करेगा जिससे कि ज्यादा से ज्यादा लोग इन ग्रंथों का उपयोग कर सकें।
- न्यास महापंडित राहुल सांकृत्यायन के समग्र साहित्य एवं उन पर हो रहे कार्यों को एक स्थान पर उपलब्ध करेगा।
- न्यास महापंडित राहुल सांकृत्यायन की रचनाओं को सस्ते दाम पर आम जनता को उपलब्ध करायेगा। ऐसा करने के पीछे न्यास का मुख्य उद्देश्य है महापंडित राहुल सांकृत्यायन के विचारों को जन साधारण तक पहुँचाना जिनके लिए उन्होंने लिखा।

***आवरण चित्र (बाए) :** भारतीय आदिम जाति सेवक संघ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ट्राइबल पैनोरमा' पुस्तक से साभार*

'महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान' के लिए डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय, बी-3, सी.ई.एल. अपार्टमेंट्स, बी-14, वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली-110096 द्वारा प्रकाशित तथा प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी.रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित। **संपादक - डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय** **सहयोग राशि- 15 रुपये**